

धर्म क्या कहता है ? : ४

वैदिक धर्म क्या कहता है ?

(तीसरा भाग)

श्रीकृष्णदत्त भट्ट

सर्व - सेवा - संघ - प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी

प्रकाशक : मंत्री, सर्व-सेवा-संघ,
राजघाट, वाराणसी

संस्करण : प्रथम : दिसम्बर, १९६३ : ३,०००

द्वितीय : फरवरी, १९६५ : ५,०००

कुल प्रतियाँ : ८,०००

मुद्रक : नरेन्द्र भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, वाराणसी

मूल्य : ६० पैसे

Title : VAIDIK DHARMA KYA

KAHATA HAI ? (3)

Author : Shrikrishna Datta Bhatta

Subject : Religion

Publisher : Secretary,
Sarva Seva Sangh,
Rajghat, Varanasi

Edition : Second

Copies : 5000; February, '65

Total Copies : 8,000

Price : 60 Paise

प्रकाशकीय

‘धर्म क्या कहता है ?’ पुस्तक-मालाकी पहली पुस्तक है : ‘धर्मोंकी फुलवारी’ । उसमें बताया गया है कि संसारमें फैले अनेक धर्मोंमें बाहरी भिन्नताके बावजूद सबके भीतर, सबकी बुनियादमें, एक ही भावना है : सत्य, प्रेम और करुणा ।

पुस्तक-मालाकी दूसरी पुस्तक है : ‘वैदिक धर्म क्या कहता है ?’ (पहला भाग) । हिन्दू-धर्मका मूल आधार है वेद । उसके चार भाग हैं : १. संहिता, २. ब्राह्मण, ३. आरण्यक और ४. उपनिषद् । चारोंकी एक हलकी-सी झाँकी देकर उसमें बताया गया है कि वैदिक धर्म क्या है और उसमें क्या कहा गया है ।

इसी पुस्तक-मालाकी तीसरी पुस्तक है ‘वैदिक धर्म क्या कहता है ?’ (दूसरा भाग) । इसमें हिन्दू-धर्मके अन्य आधार-ग्रन्थों—स्मृति, वाल्मीकि-रामायण, योगवाशिष्ठ, महाभारत तथा दर्शन-शास्त्रोंकी हलकी-सी झाँकी दी गयी है ।

इसी पुस्तक-मालाकी यह चौथी पुस्तक है—‘वैदिक धर्म क्या कहता है ?’ (तीसरा भाग) । इस पुस्तकमें हिन्दू-धर्मके विशिष्ट अंग भागवत धर्मका परिचय दिया गया है । इसमें गीता, पुराण, भागवत तथा तुलसी-रामायणकी हलकी-सी झाँकी देकर बताया गया है कि वैदिक धर्मके पीछे एक ही मूल प्रेरणा है : सत्य, प्रेम, और करुणा ।

हम मानते हैं कि हमारी ‘धर्म क्या कहता है ?’ पुस्तक-मालाका सर्वत्र स्वागत होगा ।

अनुक्रम

१. भागवत धर्म

५-७

२. गीतामें कहा है

८-२५

१. प्रज्ञा है उसकी स्थिरा ९, २. कर्म कर : फल भगवान्पर छोड़ १४, ३. चोला ही तो है ! १५, ४. ऐसा भक्त भगवान्को प्यारा है १६, ५. सब घट मोरा साइयाँ १९, ६. यज्ञ : दान : तप २०, ७. दैवी सम्पदा : आसुरी सम्पदा २२, ८. नरकसे कसे बचें ? २३, ९. पापीको भी भगवान् अपनाते हैं २५ ।

३. पुराणमें कहा कहा है

२६-४६

१. भगवान् कैसे प्रसन्न होते हैं ? २७, २. सत्य बोलो, मोठा बोलो २८, ३. भगवान् कहाँ रहते हैं ? २९, ४. वैष्णव वह है ३७, ५. दुखियोंका दुःख दूर करूँ मैं ! ३७, ६. मनसे बन्धन : मनसे मोक्ष ३९, ७. जसा चिन्तन, वैसा फल ४०, ८. स्वर्गमें कौन जाते हैं, नरकमें कौन ? ४३, ९. मोक्ष ज्ञानसे, संस्कारसे नहीं ४४, १०. मुक्ति किसे मिलती है ? ४६ ।

४. भागवतमें कहा है

४७-६७

१. देवाय तस्मै नमः ४८, २. धर्मके लक्षण ४९, ३. मन-के जीते जीत है ५१, ४. उत्तम भागवतके लक्षण ५२, ५. जित देखों तित श्याममयी है ! ५३, ६. दत्तात्रेयके चौबीस गुरु ५५, ७. तृष्णाका त्याग करो ६३, ८. अर्थका अनर्थ छोड़ो ६४, ९. मुक्त पुरुष वह है ६५, १०. मुक्तिके साधन ६६ ।

५. तुलसी रामायण में कहा है

६८-७९

१. जगत प्रकास्य प्रकासक रामू ६९, २. जाके अस रथ होइ दृढ़ ७०, ३. राम बसहु तिन्हके मन माँही ७१, ४. परहित सरिस धर्म नहि भाई ७३, ५. धर्म न दूसर सत्य समाना ७४, ६. संत सहहि दुख परहित लागी ७५, ७. बसइ भगति जाके उर माँही ७६, ८. मोह न अन्व कीन्ह केहि केही ? ७७, ९. कारन बिनु रघुनाथ कृपाला ७८, १०. लोक लाहु पर-लोक निबाहु ७९, ११. सीय राममय सब जग जानी ७९ ।

भागवत धर्म

हिन्दू धर्ममें भक्तिकी धारा ही भागवत धर्मके रूपमें विकसित हुई है। पुराण और भागवत, गीता और रामायण हिन्दू धर्मके गलेका हार हैं।

वेद तो सबका आधार है ही, पर वे हैं कठिन। शास्त्र भी साधारण लोगोंकी समझके परे हैं।

जनताको तो वही बात रुचती और पचती है, जो सीधे-सरल ढंगसे कही जाय और जिसकी भाषा दिलको छूनेवाली हो।

ॐ, ब्रह्म, निराकार, निर्गुण परमात्माकी बात लोगोंको समझनेमें कड़ी पड़ती है। पर सगुण, साकार भगवान्की बात आसानीसे गले उतर जाती है।

गोपियाँ ऊधोसे पूछती हैं:

निरगुन कौन देसको बासी ?

छोड़ोजी, निर्गुण निराकारकी बात ! हमें तो सगुण-साकारकी बात सुनाओ।

गोपियोंकी भाषामें भक्तका ही हृदय बोलता है । भागवत धर्ममें भक्तकी यह भावना ही साकार हो उठी है ।

भक्ति का तत्त्व

युग-युगसे मानव-हृदयमें एक प्यास है । एक छटपटाहट है । वह अपने प्रियतमसे, अपने प्रेमास्पदसे मिलनेको अधीर है । जबतक वह उससे मिल नहीं पाता, उसके विरहमें पड़ा तड़फड़ाता रहता है ।

विरहकी यह अवधि कैसे बीतती है, इसकी कल्पना गोपियोंके विरहसे अथवा अशोक-वाटिकामें सीताके विरहसे की जा सकती है । उस आकुलतामें भी रस है । सीता कहती है :

अवगुन एक मोर मैं माना ।
 बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना ॥
 नाथ सो नयनन्हिको अपराधा ।
 निसरत प्रान करहिं हठि बाधा ॥
 बिरह अगिनि तनु तूल समीरा ।
 स्वास जरइ छिन माहिं सरीरा ॥
 नयन खरवाहिं जलु निज हित लागी ।
 जरै न पाव देह बिरहागी ॥

भरत का भी वही हाल है :

पुलक गात हिय सिय रघुबीरु ।
 जीह नाम जप लोचन नीरु ॥

भक्ति के साधन

विरह या मिलन, भक्त दोनों स्थितियोंका स्वागत करता है ।

वस्त्रमें हिज़्का ग़म हिज़्में मिलनेकी खुशी,
कौन कहता है जुदाईसे बिसाल अच्छा है ?

इसके लिए उसका ध्यान एक ही बातकी ओर रहता है
और वह है !

अँसुवन जल सींचि-सींचि, प्रेम-बेलि बोयी !

आँस बहा-बहाकर, हृदयको धो-धोकर वह स्वच्छ बनाता है
और तभी उसकी प्रेमकी बेल लहलहाती है ।

उसके सारे कर्म प्रियतमके लिए होते हैं :

जो कछु करौं सो पूजा !

खाना-पीना हो, पहनना-ओढ़ना हो, कोई भी काम हो—वह
प्रियतम की प्रसन्नताके लिए ही करता है ।

ऐसे व्यक्तिसे, ऐसे साधकसे, ऐसे भक्तसे ऐसा कोई काम
होगा ही कैसे, जो गलत हो, जिसमें किसीका जी दुखे ? ऐसे
भक्तको तो हर जगह अपने ही प्रभुकी माधुरीके दर्शन होते हैं ।
उसका रोम-रोम पुकारता है :

जित देखों तित श्याममयी है ।

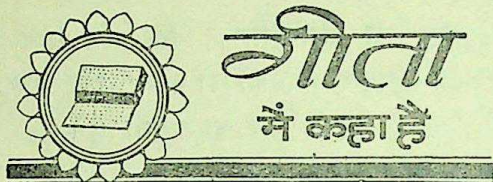
श्याम कुंजवन जमुना श्यामा ,

श्याम गगन घनघटा छई है ।

सबै रंगनमें श्याम भरो है ,

लोग कहत यह बात नयी है ॥

जो व्यक्ति घट-घटमें परम प्रिय भगवान्‌के दर्शन करेगा,
उसके हृदयमें सत्य, प्रेम, करुणा छोड़ और होगा ही क्या ? ●



धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्रमें आमने-सामने कौरवों और पाण्डवोंकी सेना खड़ी है। अर्जुन कहता है कृष्णसे : “भगवन्, साग-पात खाकर भी पेट भरा जा सकता है, बिना राज्यके भी जिया जा सकता है ! फिर मैं खूनकी नदी क्यों बहाऊँ ?”

कृष्ण कहते हैं : “कहाँसे आ घेरा तुम्हें मोह ने ? ऐ अर्जुन ! यह न तो तुम्हें शोभा देता है, न उचित है।”

और उसके बाद कृष्णने तरह-तरहसे अर्जुनको समझाया कि शरीर क्या है, आत्मा क्या है, कर्म क्या है, अकर्म क्या है, ज्ञान क्या है, भक्ति क्या है, दैवी सम्पत्ति क्या है, आसुरी सम्पत्ति क्या है ?

अर्जुन समझ गया। बोला :

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाऽच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥

अच्युत ! तुम्हारी कृपासे मेरा मोह अब चला गया है । स्मृति मुझे प्राप्त हो गयी है । संशयरहित स्थितिको मैं पहुँच गया हूँ । अब मैं वही करूँगा, जो तुम कहोगे ।

मोहको मिटानेवाला गीताका यह ज्ञान अर्जुनके लिए जैसा गुणकारी सिद्ध हुआ, हम सबके लिए भी हो !

प्रज्ञा है उसकी स्थिरा

: १ :

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।

आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥

हे अर्जुन ! जब मनुष्य अपने मनमें उठनेवाली सारी इच्छाओंको त्याग देता है, आत्मासे ही आत्मामें संतुष्ट रहता है, तब उसकी प्रज्ञा, उसकी बुद्धि स्थिर है, ऐसा कहा जाता है ।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।

वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥

दुःख मिलनेपर जिसे उद्वेग नहीं होता, सुखों की जिसे स्पृहा नहीं है, जिसमें न राग है, न भय है, न क्रोध, उसे मुनि लोग 'स्थितप्रज्ञ' कहते हैं ।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभा शुभम् ।

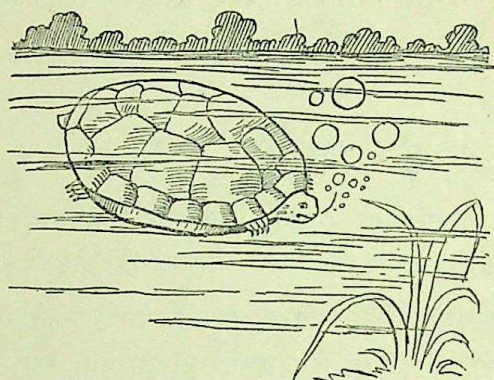
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

जो किसीमें ममता नहीं करता, शुभको पाकर जो तुष्ट नहीं होता, अशुभको पाकर जो रुष्ट नहीं होता, उसकी बुद्धि स्थिर है ।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

कछुआ जिस तरह अपने अंगोंको समेट लेता है, उसी तरह



जो पुरुष अपनी इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे समेट लेता है, वह स्थितप्रज्ञ है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।

रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥

इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंको ग्रहण न करनेसे विषय तो छूट जाते हैं, पर उनका रस नहीं छूटता। वह तभी छूटता है, जब परमात्माके दर्शन हो जाते हैं।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।

इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥

हे अर्जुन ! बुद्धिमान् मनुष्य कोशिश करता है, फिर भी मथ डालनेवाली इन्द्रियाँ जवरन मनको खींच ले जाती हैं।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।

वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

उन सब इन्द्रियोंको संयमसे वशमें करके भगवान्में मन लगाये । जिसकी इन्द्रियाँ उसके वशमें रहती हैं, उसीकी बुद्धि स्थिर होती है ।

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।

सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥

क्रोधाद् भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।

स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥

भोगोंका चिन्तन करनेसे उनमें आसक्ति पैदा हो जाती है । आसक्तिसे उन्हें भोगनेकी इच्छा पैदा होती है । उससे क्रोध होता है । क्रोधसे मोह होता है । मोहसे स्मृतिमें भ्रम होता है । उससे बुद्धिका नाश हो जाता है । बुद्धिका नाश होनेसे आदमी कहींका नहीं रहता ।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।

आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥

जिस आदमीने राग-द्वेषसे छुटकारा पा लिया है और इन्द्रियोंको अपने वशमें कर रखा है, वह उनके भोग भोगता हुआ भी अन्तःकरण की प्रसन्नताको प्राप्त कर लेता है ।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।

प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥

जिसका अन्तःकरण प्रसन्न होता है, उसके सब दुःख दूर हो जाते हैं। ऐसे आदमीकी बुद्धि बहुत जल्दी स्थिर हो जाती है।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।

न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥

जो अयुक्त है, योगी नहीं है, प्रसन्नचित्तवाला नहीं है, उसमें न बुद्धि रहती है, न भावना। बिना भावनाके शान्ति कहाँ ? अशान्त आदमीको सुख कहाँ ?

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।

तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नाविमिवाम्भसि ॥

इन्द्रियोंके विषयोंमें विचरनेवाला, उनके पीछे दौड़नेवाला मन मनुष्यकी बुद्धिको उसी प्रकार खींच ले जाता है, जिस प्रकार पानीमें नावको हवा खींच ले जाती है।

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

इसलिए हे महाबाहो, जो मनुष्य विषयोंसे इन्द्रियोंको बिलकुल समेट लेता है, उसकी बुद्धि स्थिर रहती है।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।

यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

सब प्राणियोंके लिए जो रात्रि है, संयमीके लिए वह दिन है। संसारी लोगोंके लिए जो दिन है, मुनियोंके लिए वही रात्रि है।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।

तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥

चारों ओरसे भरे हुए अचल समुद्रमें नदी और नद, जिस तरह समा जाते हैं, उसी तरह जिस आदमीकी सारी कामनाएँ उसीमें समा जाती हैं, उसे शान्ति प्राप्त होती है । कामनाओंके पीछे दौड़नेवालेको शान्ति नहीं मिलती ।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।

निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति ॥

शान्ति उसे मिलती है, जो सारी कामनाओंको त्याग देता है, जिसे किसीकी ममता नहीं रहती, किसी बातका अहंकार नहीं रहता, किसी बातकी स्पृहा नहीं रहती ।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।

स्थित्वाऽस्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ १

यह है ब्राह्मी स्थिति । हे पार्थ, इसे पाकर मनुष्य मोहमें नहीं पड़ता । अन्तकालमें इससे ब्रह्मानन्द प्राप्त हो जाता है ।

कर्म कर : फल भगवानपर छोड़

: २ :

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥ १

कर्म करना ही तेरे अधिकारकी बात है, फल नहीं । न तो तू कर्मके फलकी इच्छा कर और न हाथपर हाथ रखे हुए अकर्मण्य बनकर बैठ रह ।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।

सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥ २

हे अर्जुन, तू तो आसक्ति छोड़कर कर्म करता चला जा । उसमें सफलता मिले या असफलता, दोनोंको एक-सा मान । इसी समभावको 'योग' कहा जाता है ।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।

यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ ३

हे अर्जुन, तू जो कुछ कर्म करता है, जो कुछ खाता है, जो कुछ हवन करता है, जो कुछ दान देता है, जो कुछ तपस्या करता है, वह सब मुझे ही अर्पण कर दे ।

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।

संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥ ४

भगवान् कहते हैं कि कर्मोंका फल मुझे अर्पण करनेसे तू संन्यास-योगवाला हो जायगा । शुभ और अशुभ कर्मफलोंसे तू मुक्त हो जायगा और तब तू मुझे ही प्राप्त होगा ।

बोला ही तो है !

: ३ :

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्य शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥^१

आत्माका न तो जन्म होता है, न मृत्यु । यह फिर फिर होनेवाला नहीं है । यह अजन्मा है, नित्य है, शाश्वत है, पुरातन है । शरीरके नाश होनेपर भी इसका नाश नहीं होता ।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥^२

कपड़े जब जर्जर होते हैं, तब उन्हें फेंक हम देते हैं ।
उनके बदलेमें पहन साफ, अरु सुन्दर कपड़े लेते हैं ॥
आत्माका कपड़ा यह तन है, जब यह जर्जर हो जाता है ।
तब इसे फेंक वह देता है, अरु नूतन तनमें जाता है ॥

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥^३

आत्माको न तो हथियार काट सकते हैं, न आग जला सकती है । जल इसे गीला नहीं कर सकता । वायु इसे सुखा नहीं सकती ।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।

तथा देहान्तरप्राप्तिर्धोस्तत्र न मुह्यति ॥^४

१. गीता २।२० । २. वही २।२२ । ३. वही २।२३ ।
४. वही २।१३

जीवात्माकी इस देहमें जैसे कुमार अवस्था होती है, युवा अवस्था होती है, वृद्धावस्था होती है, उसी तरह दूसरे शरीरकी भी प्राप्ति होती है। धीर पुरुष इस विषयमें कोई मोह नहीं करते।

ऐसा भक्त भगवान्‌को प्यारा है

: ४ :

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।

निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ॥

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।

मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।

हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तोयः स च मे प्रियः ॥

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।

सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।

शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः ॥

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।

शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविर्जितः ॥

तुल्यनिन्दास्तुतिमौनी सन्तुष्टो येन केनचित् ।

अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः ॥

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।

श्रद्धावाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥

भगवान्‌ कहते हैं कि ऐसा भक्त मुझे परम प्रिय है :

जो किसी प्राणीसे द्वेष नहीं करता । सबका मित्र है । दयालु है । जिसमें न ममता है, न अहंकार । सुख, दुःख दोनों जिसके लिए समान हैं । जो क्षमावान्‌ है ।

जो सदा संतोषी है । योगी है । शरीर, इन्द्रिय और मनको वशमें रखता है । दृढ़ निश्चयवाला है । मन और बुद्धि जिसने भगवान्‌को अर्पित कर रखी है ।

न तो उससे किसी जीवको उद्वेग होता है, न उसे किसी जीव से उद्वेग होता है । उसे न तो हर्ष है, न संताप । न भय है, न और कोई उद्वेग ।

उसे किसी चीजकी आकांक्षा नहीं रहती । बाहर, भीतरसे वह पवित्र रहता है । चतुर होता है । किसीका पक्षपात नहीं करता । दुःखोंसे मुक्त रहता है । कर्ममें कर्तापिनका अभिमान नहीं रखता ।

वह न किसी बातसे प्रसन्न होता है, न दुःखी । न किसी बातका सोच करता है, न कुछ चाहता है । शुभ और अशुभ सभी कामोंका फल उसने छोड़ रखा है ।

मित्र और शत्रुमें उसका एक-सा भाव रहता है । मान और अपमान, गर्मी और सर्दी, सुख और दुःख उसके लिए बराबर हैं । संसारमें उसकी कोई आसक्ति नहीं है ।

निन्दा और स्तुति उसके लिए बराबर है । मौनी है ।

जो मिले, उसीमें संतुष्ट है। किसी स्थानमें उसे ममता नहीं रहती।

भगवान्‌के ऐसे श्रद्धालु भक्त, जो निष्काम भावसे इस धर्म-मय अमृतका सेवन करते हैं, वे भगवान्‌को अत्यन्त प्रिय हैं।

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।

छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥^१

जिनके पाप नष्ट हो गये हैं, संशय दूर हो गये हैं और जो सब प्राणियोंके हितमें लगे हैं, ऐसे ब्रह्मवेत्ता पुरुष परम ब्रह्मको प्राप्त होते हैं।

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।

ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥^२

इन्द्रियोंको जिन्होंने वशमें कर रखा है, सब जगह जो सम-बुद्धिसे बरतते हैं और सभी प्राणियोंके कल्याणके काममें लगे हैं, उन्हें भगवान्‌की प्राप्ति होती है।

सत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।

निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥^३

हे अर्जुन, जो सब कर्म मुझे समर्पण करता है, मेरे लिए तत्पर है, मेरा भक्त है, किसीमें आसक्ति नहीं रखता और किसी भी प्राणीसे वैर नहीं रखता, वह मुझे ही प्राप्त करता है।

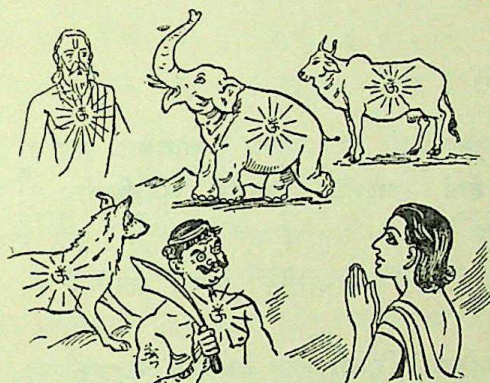
सब घट मोरा साइयाँ

: ५ :

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥ १

जानी लोग विद्वान् और विनयी ब्राह्मणमें, गौमें, हाथीमें,



कुत्तेमें, चाण्डालमें समभावसे देखते हैं । वे जानते हैं कि सबके भीतर एक ही परमात्मा विराजमान है ।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।

तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ २

जो आदमी भगवान् को सब जगह देखता है और भगवान् में ही सबको देखता है, न तो भगवान् उसकी आँखसे ओझल होते हैं और न वह भगवान् की आँखसे ओझल होता है ।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।

विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥^१

जो आदमी नाश होनेवाले चर और अचरके भीतर नाश न होनेवाले परमेश्वरको सभी प्राणियोंमें समभावसे विराजमान देखता है, उसीका देखना सार्थक है ।

यज्ञः दानः तपः

: ६ :

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।

यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥^२

यज्ञ, दान और तप अवश्य करने चाहिए । इन्हें कभी नहीं छोड़ना चाहिए । ये बुद्धिमानोंको पवित्र करते हैं ।

यज्ञ

इष्टान्भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।

तैर्दत्तान्प्रदायोभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥^३

यज्ञसे सम्मानित देवता बिना माँगे ही भोग देंगे । जो आदमी उनके द्वारा दिये भोगोंको उन्हें समर्पित किये बिना भोगता है, वह निश्चय ही चोर है ।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।

भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥^४

१. गीता १३।२७ । २. वही १८।५ । ३. वही ३।१२ ।

४. वही ३।१३

यज्ञसे बचे हुए अन्नको जो खाते हैं, वे सब पापोंसे छूट जाते हैं । पापी लोग सिर्फ अपने शरीरके लिए ही बनाते-पकाते हैं । वे पापको ही खाते हैं ।

दान

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।

देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥^१

दान देना कर्तव्य है—ऐसा मानकर देश, काल और पात्रको देखकर प्रत्युपकार न करनेवालेको दिया दान सात्त्विक दान है ।

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।

दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥^२

जिससे मनमें क्लेश हो, जिसमें प्रत्युपकारका भाव हो और जो फलके उद्देश्यसे दिया जाय, वह राजस दान है ।

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।

असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥^३

बिना सत्कारके तिरस्कारपूर्वक अयोग्य देश-कालमें कुपात्रको जो दान दिया जाता है, वह तामस दान है ।

तप

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।

ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥^४

१. गीता १७।२० । २. वही १७।२१ । ३. वही १७।२२ ।
४. वही १७।१४

देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानियोंकी पूजा करना; पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसाका पालन करना—यह है शारीरिक तप, शरीरका तप ।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।

स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥^१

किसीको उद्वेग न करनेवाला, कष्ट न देनेवाला, सत्य, प्रिय, हितकर वचन बोलना और स्वाध्याय करना—यह है वाचिक तप, वाणीका तप ।

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।

भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥^२

मनकी प्रसन्नता, शांत भाव, मौन, मनको बश में रखना और अंतःकरणकी पवित्रता—यह है मानसिक तप, मनका तप ।

दैवी सम्पदा : आसुरी सम्पदा

: ७ :

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।

दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥

अहिंसासत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।

दयाभूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।

भवन्ति सम्पदां दैवीमभिजातस्य भारत ॥^३

दैवी सम्पदाके लक्षण हैं : अभय, अन्तःकरणकी शुद्धि, ज्ञानमें दृढ़ स्थिति, दान, इन्द्रियोंका दमन, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, क्रोध न करना, कर्तापनके अहंकारका त्याग, शांति, किसीकी निन्दा न करना, सब प्राणियोंपर दया, विषयोंकी लोलुपता न रखना, कोमलता, लज्जा, चपलताका न होना, तेज, क्षमा, धैर्य, भीतरी-बाहरी पवित्रता, किसीसे वैर न करना और अभिमान न करना ।

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पातुष्यमेव च ।

अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ॥ १

आसुरी सम्पदाके लक्षण हैं : पाखण्ड, घमण्ड, अभिमान, क्रोध, कड़वी वाणी और अज्ञान ।

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता । २

दैवी सम्पत्ति मुक्तिके लिए है, आसुरी सम्पत्ति बन्धनके लिए ।

नरकसे कैसे बचें ?

: ८ :

त्रिविधं नरकस्थेदं द्वारं नाशनमात्मनः ।

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

आत्माको गिरानेवाले नरकके तीन द्वार हैं : काम, क्रोध और लोभ । इन तीनोंको छोड़ देना चाहिए ।

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।

अनिच्छन्नपि वाष्ण्यं बलादिव नियोजितः ॥ १

अर्जुनने पूछा : हे कृष्ण, यह तो बताओ कि आदमीको कौन जबरन खींचकर पापकी ओर ले जाता है ?

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।

महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥ २

रजोगुणसे पैदा यह काम है, क्रोध है । भोग भोगनेकी इसकी लालसा ही नहीं मिटती । बड़ा पापी है यह । इसे ही अपना वैरी जानो ।

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।

तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ ३

हे कृष्ण, यह मन बड़ा चंचल है । आदमीको मथ डालता है । बड़ा बलवान् है यह मन । मुझे तो लगता है कि इसे वशमें करना वैसा ही कठिन है, जैसा वायुको वशमें करना ।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ ४

ठीक कहते हो अर्जुन ! मनको वशमें करना कठिन है । पर अभ्यास और वैराग्यसे उसे काबूमें किया जा सकता है ।

पापीको भी भगवान् अपनाते हैं

: ९ :

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।

साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥^१

भगवान् कहते हैं कि यदि अत्यन्त पापी भी अनन्य भावसे मेरी भक्ति करे, तो उसे साधु ही मानना चाहिए, क्योंकि वह पक्के निश्चयवाला है ।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य योऽपि स्युः पापयोनयः ।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥^२

हे अर्जुन, पापीसे पापी लोग, स्त्री, वैश्य, शूद्र भी मेरी शरण लें, तो उन्हें उत्तम गति मिलेगी ।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।

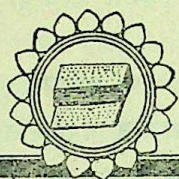
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥^३

जो भी आदमी भक्तिसे मुझे पत्र, पुष्प, फल, जल अर्पण



करता है, उसे मैं बड़े प्रेमसे ग्रहण करता हूँ ।

१. गीता १।३० । २. वही १।३२ । ३. वही १।२६



पुराण में कहा है

पुराणोंमें कहानियाँ हैं बहुत पुरानी-पुरानी । सर्वसाधारण-को धर्मका ज्ञान करानेके लिए व्यास भगवान्ने ये कहानियाँ रची हैं । एक-से-एक रोचक, एक-से-एक हितकर । 'हितं मनो-हारि' काव्य है यह !

एक-एक कहानीमें रस भरा पड़ा है, ज्ञान भरा पड़ा है । जो पढ़ता है, उसमें डूब जाता है । भगवान्के विभिन्न रूपों, अवतारों और लीलाओंका बहुत ही रोचक वर्णन है पुराणोंमें ।

और पुराणोंका सार ?

सार एक ही है : दूसरों का उपकार करो, किसी भी जीवको सताओ मत :

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् ।

परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥

भगवान कैसे प्रसन्न होते हैं ?

: १ :

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।

जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥^१

संसारको पालनेवाले, गौ और ब्राह्मणोंके रक्षक गोविन्द
श्रीकृष्णको हम बार-बार प्रणाम करते हैं ।

अहिंसा प्रथमं पुष्पं द्वितीयं करणग्रहः ।

तृतीयकं भूतदया चतुर्थं क्षान्तिरेव च ॥

शमस्तु पञ्चमं पुष्पं दमः षष्ठं च सप्तमम् ।

ध्यानं सत्यं चाष्टमं च ह्येतैस्तुष्यति केशवः ॥^२

इन आठ पुष्पोंको चढ़ानेसे भगवान् प्रसन्न होते हैं : १. अहिंसा,
२. इन्द्रियोंका संयम, ३. सभी जीवोंपर दया, ४. क्षमा, ५. शम,
६. दम, ७. ध्यान और ८. सत्य ।

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमकल्कता ।

एतानि मानसान्याहुर्ब्रतानि हरितुष्टये ॥^३

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य और
बिना कपटका जीवन—इन मानसिक व्रतोंका पालन करनेसे
भगवान् प्रसन्न होते हैं ।

सत्यं शौचमहिंसा च क्षान्तिर्दानं दया दमः ।

अस्तेयमिन्द्रियाकोचः सर्वेषां धर्मसाधनम् ॥^४

१. विष्णुपुराण १।११।६५ । २. पद्म०, पाताल ८४।५६-५७ ।
३. वही ८४।४२ । ४. स्कन्दपुराण, का० पू० ४०।८६

सत्य, शौच, अहिंसा, क्षमा, दान, दया, दम, अस्तेय और इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर अपने भीतर स्थापित करना, ये नौ सबके लिए धर्मके साधन हैं ।

सत्य बोलो, मीठा बोलो

: २ :

सत्यपूतां वदेद् वाणीं मनःपूतं समाचरेत् ॥^१

सत्यसे पवित्र हुई वाणी बोलनी चाहिए । मनसे जो पवित्र जान पड़े, उसीका आचरण करना चाहिए ।

सत्येनार्कः प्रतपति सत्ये तिष्ठति मेदिनी ॥

सत्यं चोक्तं परो धर्मः स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितः ॥

अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ।

अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥^२

सत्यसे ही सूर्य तप रहा है । सत्यपर ही पृथ्वी टिकी हुई है । सत्य सबसे बड़ा धर्म है । सत्यपर ही स्वर्ग प्रतिष्ठित है । तराजूके एक पलड़े पर हजार अश्वमेध यज्ञोंको रखें और दूसरेपर सत्यको, तो सत्यका ही पलड़ा भारी रहेगा ।

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।

प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मो विधीयते ॥^३

१. पद्मपुराण, स्वर्ग० ५९।१९ । २. मार्क० ८।४१-४२ । ३. स्कन्द-
पुरा०, ब्रा० ध० मा० ६।८८

सत्य बोले, मीठा बोले । ऐसा सत्य न बोले, जो कड़ुवा हो ।
ऐसा मीठा भी न बोले, जो असत्य हो, झूठ हो । वेद-शास्त्रमें यही
धर्म बताया गया है ।

सत्येन तपसा ज्ञानध्यानेनाध्ययनेन वा ।

ये धर्ममनुवर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ १

सत्य, तपस्या, ज्ञान, ध्यान और स्वाध्यायके द्वारा जो लोग
धर्मका पालन करते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं ।

भगवान् कहाँ रहते हैं ?

: ३ :

नरोत्तम माता-पिताकी सेवा छोड़कर तीर्थयात्राको निकल



पड़ा । तीर्थ-सेवनके प्रतापसे उसके कपड़े खुले आकाशमें बिना
सहारेके सूखने लगे ।

नरोत्तमको बड़ा अहंकार हो गया ।

एक दिन एक वगुलेने उसके सिरपर बीट कर दी । उसने



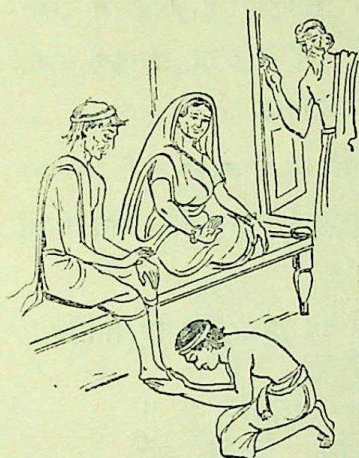
नाराज होकर उसे शाप दे दिया । बेचारा जलकर भस्म हो गया ।

यह तो हुआ, पर अब आकाशमें उसके कपड़ोंका उड़ना और सूखना बन्द हो गया ।

नरोत्तम इस घटनासे बहुत उदास हो गया । तब आकाश-वाणी हुई “हे ब्राह्मण ! तुम परम धार्मिक मूक चाण्डालके पास जाओ । उससे तुम्हें पता चल जायगा कि धर्म क्या है ।”

नरोत्तम खोजते-खोजते मूक चाण्डालके घर पहुँचा । वह अपने माता-पिताकी सेवामें लगा था । बोला : “आप बाहर ठहरें । मैं आपका आतिथ्य करना चाहता हूँ ।”

रुकने की बात सुनकर नरोत्तमको अपना अपमान-सा लगा ।



उसने तयौरियाँ चढ़ायीं, तो मूकने कहा : “ब्राह्मण देवता ! आप नाराज क्यों होते हैं ? मैं वगुला नहीं, जो आप भस्म कर देंगे । मुझसे पूछना है, तो कुछ देर ठहरना पड़ेगा । जल्दी हो, तो चले जाइये शुभा पतिव्रताके घर । वह आपको धर्मका रहस्य बता देगी ।”

मूक चाण्डालके घरसे एक दूसरे ब्राह्मण देवता निकले । वे नरोत्तमसे बोले : “चलो, मैं तुम्हें पहुँचा देता हूँ उस पतिव्रताके घर ।”

नरोत्तमने पूछा : “पतिव्रता कैसी होती है ?”

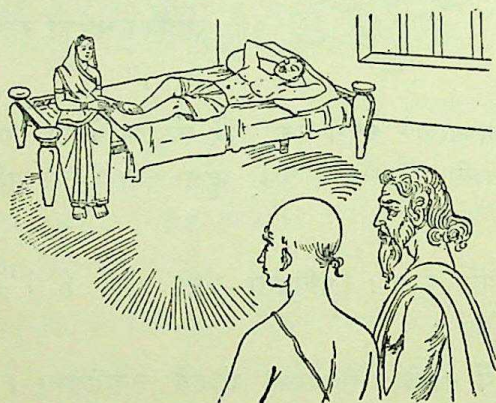
वह बोला :

कार्ये दासी रतौ रम्भा भोजने जननीसमा ।
विपत्सु मन्त्रिणी भर्तुः सा च भार्या पतिव्रता ॥
भर्तुराज्ञां न लङ्घेद् या मनोवाक्कायकर्मभिः ।
भुङ्क्ते पतौ सदा चात्ति सा च भार्या पतिव्रता ॥ १

‘जो दासीकी तरह मन लगाकर घरका काम करती है, माँकी तरह प्रेमपूर्वक पतिको भोजन कराती है, विहारमें रम्भाकी तरह सुख देती है, विपत्तिमें मंत्रीकी तरह हितकर सलाह देती है, ऐसी स्त्रीका नाम है—पतिव्रता ।

‘मनसे, वचनसे, कर्मसे जो पतिकी आज्ञाका कभी उल्लंघन नहीं करती और पतिके भोजन कर लेनेके बाद ही भोजन करती है, उसका नाम है—पतिव्रता ।’

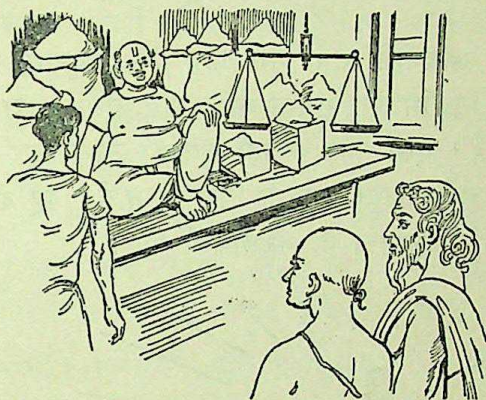
नरोत्तम जब शुभा पतिव्रताके घर पहुँचा, तो वह पतिसेवामें



लगी थी । उसे भी फुरसत नहीं थी । उसने कहा : “पतिकी सेवासे खाली होनेपर ही मैं आपकी शंकाओंका समाधान कर सकूंगी ।”

नरोत्तमको बुरा लगा । उसे नाराज होते देख शुभाने कहा :
“महाराज, मैं बगुला नहीं हूँ । आपको जल्दी है, तो जाइये
तुलाधार वैश्यके पास ।”

नरोत्तम वहाँ पहुँचा । उसे भी फुर्सत नहीं थी । बोला :



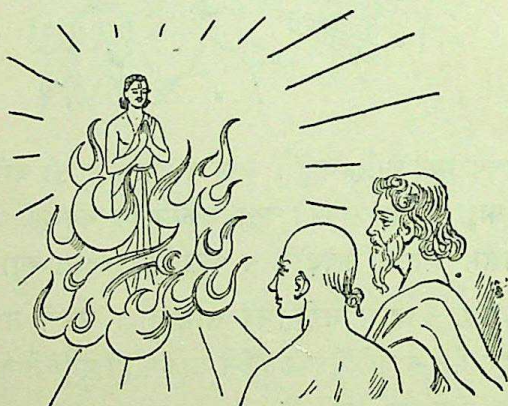
“पहर राततक मुझे फुर्सत नहीं । आप न रुक सकें, तो चले जाइये
अद्रोहकके पास । वह आपको बता सकेगा कि बगुलेके मरने का
और आकाशमें आपके कपड़ोंके न सूखनेका रहस्य क्या है ।”

पहलेवाला ब्राह्मण नरोत्तमके साथ था । उससे नरोत्तमने
पूछा : “इस मैले-कुचैले वैश्यको कैसे मालूम हो गयीं वे सब बातें,
जो इसकी पीठ-पीछे हुई हैं ?”

ब्राह्मण बोला : इसने सत्य और समतासे तीन लोक जीत
लिये हैं । इसलिए भूत, भविष्य, वर्तमान सबका इसे पता है ।

सत्यं दमः शमश्चैव धैर्यं स्थैर्यमलोभता ।
 अनाश्चर्यमनालस्यं तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥
 एवं यो वर्तते नित्यं कुलकोटिं समुद्धरेत् ।
 तेन वै देवलोकस्य नरलोकस्य सर्वशः ॥
 वृत्तं जानाति धर्मज्ञस्तस्य देहे स्थितो हरिः ॥ १

‘जिस आदमीमें सत्य, शम, दम, धैर्य, स्थिरता, अनालस्य, अनाश्चर्य, निर्लोभ और समता जैसे गुण हैं, उसमें सारा विश्व ही प्रतिष्ठित है। ऐसा पुरुष करोड़ों कुलोंका उद्धार कर लेता है। उसके शरीरमें साक्षात् भगवान् विराजमान हैं। वह देवलोककी सारी बातोंको जानता है, नरलोककी भी ।’



नरोत्तम : “पर यह अद्रोहक कौन है ?”

ब्राह्मण बोला : “अद्रोहक बड़ा ही जितेन्द्रिय है । एक राजकुमार अपनी युवती स्त्रीको ६ मासतकके लिए उसके पास छोड़ गया । लोगोंने उसकी निन्दा की, तो वह जलती आगमें घुस गया, पर अग्निने न उसका शरीर जलाया, न उसके कपड़े ।”

अद्रोहकने नरोत्तमसे कहा : “आपको धर्मका रहस्य जानना है, तो वैष्णवके पास चले जाइये ।” .

नरोत्तम वहाँ पहुँचा तो वैष्णव बोला : “भीतर चलकर भगवान्‌के दर्शन करिये ।”

वह भीतर गया तो देखा कि वहाँ मन्दिरमें विष्णुके रूपमें वही ब्राह्मण देवता विराजमान हैं, जो चाण्डाल, पतिव्रता, आदिके घरमें थे और लगातार उसे रास्ता दिखाते आये हैं ।

उन्होंने नरोत्तमकी शंकाओंका समाधान कर दिया । उन्होंने बताया कि जो आदमी माता-पिताकी सेवा करता है, जो स्त्री एकान्त मनसे पतिकी सेवा करती है, जो पुरुष सच बोलता है, ईमानदारी बरतता है, अपनी इन्द्रियोंको काबूमें रखता है, उसीके यहाँ भगवान् निवास करते हैं ।

उन्होंने नरोत्तमसे कहा : “तुम घर लौट जाओ और माता-पिताकी मन लगाकर सेवा करो । तुम्हारा कल्याण होगा ।”

प्रशान्तचित्ताः सर्वेषां सौम्याः कामजितेन्द्रियाः ।
 कर्मणा मनसा वाचा परद्रोहमनिच्छवः ।
 दयार्द्रमनसो नित्यं स्तेयहिंसापराङ्मुखाः ।
 गुणेषु परकार्येषु पक्षपातमुदान्विताः ॥
 सदाचारावदाताश्च परोत्सवनिजोत्सवाः ।
 पश्यन्तः सर्वभूतस्थं वासुदेवममत्सराः ।
 दीनानुकम्पिनो नित्यं भृशं परहितैषिणः ॥
 गुणगणसुमुखाः परस्थ मर्म-

च्छदनपराः परिणाम सौख्यदा हि ।

भगवति सततं प्रदत्तचित्ताः

प्रियवचनाः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः ॥ १

वैष्णव वह है :

जिसका चित्त बिलकुल शान्त है ।

जो सबके प्रति कोमल भाव रखता है ।

जिसने इन्द्रियोंको जीत लिया है ।

जो मन, वचन, कर्मसे किसीसे बैर नहीं करता ।

जिसका मन दयासे द्रवित हो जाता है ।

जो चोरी और हिंसासे सदा दूर रहता है ।

जो सद्गुणोंका पक्षपाती है, दूसरोंके काममें लगा रहता है ।

सदाचार से जिसका जीवन पवित्र है ।

दूसरेके उत्सवको अपना उत्सव मानता है।

सब प्राणियोंमें भगवान्‌के दर्शन करते हुए किसीसे ईर्ष्या-द्वेष नहीं करता।

गरीबोंपर दया करना जिसका स्वभाव बन गया है।

दूसरोंका भला करनेकी ही सदा इच्छा रखता है।

पराये गुणोंसे प्रसन्न होता है, पराये दोष ढाँकना चाहता है।

अपना मन सदा भगवान्‌में लगाये रहता है और मीठी बोली बोलता है।

दुखियोंका दुःख दूर करूँ मैं !

: ५ :

दुःखितानीह भूतानि यो न भूतैः पृथग्विधैः ।

केवलात्मसुखेच्छातोऽवेन्नृशंसतरोऽस्ति कः ॥ १

जो आदमी अपने सुखकी इच्छा रखता है, पर दुःखमें पड़े प्राणियोंकी ओर ध्यान नहीं देता, उससे बढ़कर कठोर हृदय-वाला संसारमें और कौन है ?

ज्ञानिनो हि यथा स्वार्थमाश्रित्य ध्यानमाश्रिताः ।

दुःखार्तानीह भूतानि प्रयान्ति शरणं कुतः ॥ २

ज्ञानी लोग भी यदि अपने स्वार्थमें डूबकर ध्यानमें लगे रहेंगे, तो इस जगत्‌के दुखी प्राणी किसकी शरण लेंगे ?

को नु मे स्थादुपायो हि येनाहं दुःखितात्मनाम् ।

अन्तः प्रविश्य भूतानां भवेयं सर्वदुःखभुक् ॥^१

मेरे लिए वह कौन-सा उपाय है, जिससे मैं दुःखी चित्त-
वाले सभी जीवोंके भीतर घुसकर अकेला ही सबके दुखोंको
भोगता रहूँ ?

दृष्ट्वा तान् कृपणान् व्यङ्गाननङ्गान् रोगिणस्तथा ।

दया न जायते यस्य स रक्ष इति मे मतिः ॥^२

इन गरीब, लूले-लंगड़ों, अंगहीनों और रोगी प्राणियोंको



देखकर जिसके हृदयमें दया नहीं पैदा होती, वह मनुष्य नहीं,
राक्षस है ।

यन्मया सुकृतं किञ्चिन्मनोवाक्कायकर्मभिः ।

कृतं तेनापि दुःखार्ताः सर्वे यान्तु शुभां गतिम् ॥^३

मैंने मन, वाणी, शरीर और कर्मसे यदि कुछ पुण्यका काम
किया हो, तो उससे सभी दुःखी प्राणी शुभगतिको प्राप्त हों ।

मनसे बन्धन : मनसे मोक्ष

: ६ :

न देहो न च जीवात्मा नेन्द्रियाणि परंतप ।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ॥

मनुष्योंके बन्धनका और मोक्षका कारण है, मन । उसके लिए न देह दोषी है, न जीवात्मा और न इन्द्रियाँ ।

मनस्तु सुखदुःखानां महतां कारणं द्विज ।

जाते तु निर्मले ह्यस्मिन्सर्वं भवति निर्मलम् ॥

जनक शुकदेवसे कहते हैं कि हे द्विज, सुख-दुःखका बहुत बड़ा कारण है, मन । उसके निर्मल होनेसे सब निर्मल हो जाते हैं ।

भ्रमन्सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वा स्नात्वा पुनः पुनः ।

निर्मलं न मनो यावत्तावत्सर्वं निरर्थकम् ॥^१

सब तीर्थोंमें घूम-घूमकर पुनः पुनः स्नान कर लेनेसे क्या ! जबतक मन निर्मल नहीं होता, तबतक सब व्यर्थ है ।

जैसा चिन्तन, वैसा फल

: ७ :

दो भाई थे । बड़ेका नाम था सुवृत्त, छोटेका वृत्त । दोनों पढ़े-लिखे विद्वान् थे ।

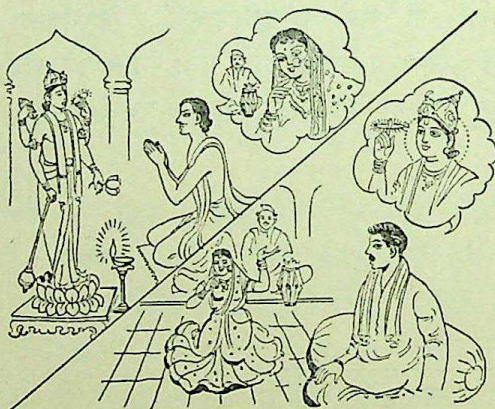
जन्माष्टमीके दिन दोनों प्रयाग पहुँचे ।

बेनीमाधवके मन्दिर का उत्सव देखने निकले थे कि जोरकी वर्षा आ गयी ।

दोनों रास्ता भूल गये ।

सुवृत्त भटककर एक वेश्याके कोठेपर पहुँच गया । उसने चाहा कि वृत्त भी उसके साथ वहीं रुक जाय, पर वह नहीं रुका ।

वृत्त भटकते-भटकते माधवजीके मन्दिर में जा पहुँचा ।



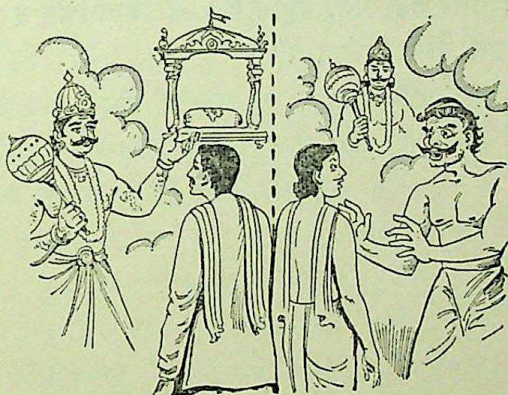
सुवृत्त वेश्याके कोठेपर था, वृत्त माधवजीके मन्दिरमें । पर दोनोंका मन ठिकानेपर नहीं था ।

सुवृत्त सोच रहा था—धन्य है वृत्त, जो आज जन्माष्टमीके अवसरपर माधवजीके दर्शन कर रहा है । मैं अभागा पड़ा हूँ इस पापके निवासमें । छिः छिः !

वृत्त खड़ा था मन्दिरमें । उसकी आँखोंके आगे पूजा, आरती, कथा-कीर्तन हो रहा था । पर उसे वह सब दीखता ही नहीं था । वह सोच रहा था—कहाँ आ फँसा मैं ! अच्छा होता, मैं भी भैया के साथ वहीं कोठेपर रहकर जीवनका आनन्द लूटता !

सबरे दोनों अपनी-अपनी जगहसे निकले और एक दूसरेको खोजने चल पड़े । जब दोनों एक दूसरेके पास पहुँचे, तभी ऊपरसे विजली गिरी और दोनों भाई एक साथ समाप्त हो गये ।

यमराजके तीन दूत वहाँ आ गये और विष्णुके दो दूत । यम-



दूतोंने वृत्तको पकड़ा । विष्णुदूतोंने सुवृत्तको अपने साथ लिया ।

सुवृत्त बोला : “यह क्या कर रहे हैं आप लोग ? मैं तो रातभर वेश्याके कोठेपर था, मुझे नरकमें ले जाना चाहिए था । वृत्त रातभर भगवान्‌के मन्दिरमें था, उसे स्वर्गमें ले जाना चाहिए था । आप उल्टा कर रहे हैं । यह तो सरासर अन्याय है ।”

विष्णुदूत हँसकर बोले : “हम लोग अन्याय नहीं करते । धर्मका रहस्य बहुत गूढ़ है । धर्मके जितने भी काम किये जाते हैं, वे सब इसीलिए कि मनुष्यका चित्त, उसका मन शुद्ध हो, पवित्र हो । आजकी तुम्हारी रात भले ही वेश्याके कोठेपर कटी है, पर इससे क्या ? मनसे तो तुम भगवान्‌का ही चिन्तन करते रहे । इसलिए तुम विष्णुलोक जानेके अधिकारी हो । तुम्हारा भाई वृत्त भले ही माधवजीके मन्दिर में रातभर रहा, पर उसका मन कहाँ था ? वह तो रातभर वेश्याका ही चिन्तन करता रहा । सोचता रहा—‘भैया, कैसा आनन्द लूट रहे होंगे, मैं उससे वंचित रह गया !’ तो जहाँ मन, वहीं हम । जो जैसा चिन्तन करेगा, वैसा ही उसे फल मिलेगा ।” १

स्वर्ग में कौन जाते हैं, नरकमें कौन ? : ८ :

ये याचिताः प्रहृष्यन्ति प्रियं दत्त्वा वदन्ति च ।

त्यक्तदानफला ये तु ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

द्विषतामपि ये द्वेषान्न वदन्त्यहितं कदा ।

कीर्तयन्ति गुणांश्चैव ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

ये शान्ताः परदारेषु कर्मणा मनसा गिरा ।

रमयन्ति न सत्त्वस्थास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥^१

माँगनेसे जो प्रसन्न होते हैं, दान देकर प्रिय वचन बोलते हैं, जिन्होंने दानका फल छोड़ दिया है, वे लोग स्वर्गमें जाते हैं ।

जो लोग अपनेसे वैर रखनेवालोंके प्रति भी कभी अहितकारी वचन मुँहसे नहीं निकालते, बल्कि सबके गुणोंका ही बखान करते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं ।

जो लोग मनसे, वचनसे और कर्मसे परायी स्त्रियोंको नहीं ताकते, वे स्वर्गमें जाते हैं ।

दानं दरिद्रस्य विभोः क्षमित्वं यूनां तपो ज्ञानवतां च मौनम् ।

इच्छानिवृत्तिश्च सुखोचितानां दया च भूतेषु दिवं नयन्ति ॥^२

जो आदमी दरिद्र हैं उनका दान करना, जो सामर्थ्यवाले हैं उनका क्षमा करना, जो जवान हैं उनका तपस्या करना, जो ज्ञानी हैं उनका मौन रखना, जो सुख भोगनेके योग्य हैं, उनका सुखकी इच्छाका त्याग करना और सभी प्राणियोंपर दया करना— ये ही हैं वे सद्गुण, जो आदमीको स्वर्गमें ले जाते हैं ।

मोक्ष ज्ञानसे, संस्कारसे नहीं

: ९ :

कहते हैं कि शुकदेवजी १२ वर्षतक माँके ही गर्भमें रहकर वेद और शास्त्रोंका श्रवण और मनन करते रहे ।

माँको पीड़ा होते देख उनके पिता व्यासजीने उनसे पूछा :
“तुम कौन हो ?”

शुकदेव बोले : “चौरासी लाख योनियोंमें भटक चुकनेके बाद क्या बताऊँ, मैं कौन हूँ ?”

व्यास : “तुम बाहर क्यों नहीं आते ?”

शुकदेव : “संसारमें भटकते-भटकते मुझे वैराग्य हो गया है । पर मैं जानता हूँ कि गर्भसे बाहर निकलते ही माया मुझे छ लेगी और उसके छूते ही मेरा ज्ञान-वैराग्य हवा हो जायगा । इसलिए मैं गर्भमें रहकर ही योगाभ्यास करना चाहता हूँ ।”

व्यासजी घबड़ाये । बोले : “तुम बाहर आ जाओ । तुम्हें माया न छू सकेगी ।”

शुकदेव बाहर आये और तुरत वनको चलने लगे ।

व्यासजी बोले : “बेटा, कुछ तो ठहरो । मैं तुम्हारा जात-कर्म संस्कार आदि तो कर दूँ ।”

शुकदेवने कहा : “इन्हीं संस्कारोंने तो मुझे संसारमें अटका रखा है । मुझे कोई जरूरत नहीं इनकी ।”

व्यास : “ऐसा भी कहीं होता है बेटा ! तुम्हें विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमका पालन करना चाहिए । उसीके बाद मोक्ष मिल सकेगा ।”

शुकदेव : “ब्रह्मचर्य से मोक्ष मिलता, तो हिजड़ोंको कभीक।
मोक्ष मिल गया होता । गृहस्थ आश्रमसे मोक्ष मिलता, तो सभी
गृहस्थ मुक्त हो जाते । वानप्रस्थ आश्रमसे मोक्ष मिलता, तो सभी
मृगोंको कबका मोक्ष मिल गया होता । संन्यास आश्रमसे मोक्ष
मिलता, तो गरीबोंको, दरिद्रोंको सबसे पहले मोक्ष मिल जाता !”

व्यास : “पुम् नामके नरकसे पुत्र ही बचाता है । पुत्र
होनेसे ही स्वर्ग मिलता है ।”

शुकदेव : “पुत्र होनेसे ही स्वर्ग मिलता, तो कुत्तों, सुअरों
और टिड्डियोंको कभीका स्वर्ग मिल गया होता ।”

व्यास : “पुत्रके दर्शनसे मनुष्य पितृऋणसे मुक्त हो जाता है ।
पौत्रके दर्शनसे देवऋणसे । प्रपौत्रके दर्शनसे स्वर्ग मिलता है ।”

शुकदेव : “गीध बहुत दिन जीते हैं । न जाने कितनी पीढ़ियाँ
देखते हैं, पर उनमेंसे कितनोंको अबतक मोक्ष मिला है ?”

इस तरह कहकर शुकदेव वनके लिए निकल पड़े ।^१

मुक्ति किसे मिलती है ?

: १० :

सर्वमात्ममयं यस्य सदसज्जगदीदृशम् ।
 गुणागुणमयं तस्य कः प्रियः को नृपाप्रियः ॥
 विशुद्धबुद्धिः समलोष्ठकाञ्चनः
 समस्तभूतेषु समः समाहितः ।
 स्थानं परं शाश्वतमव्ययं च

परं हि गत्वा न पुनः प्रजायते ॥ १

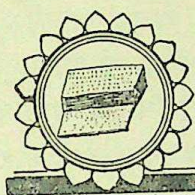
हे राजन् ! जिसकी दृष्टिमें सत् और असत्से, गुण और अवगुणसे सना यह सारा जगत् आत्माका ही रूप बन गया है, उस योगीके लिए कौन प्यारा है, कौन कुप्यारा ?

जिसकी बुद्धि शुद्ध है, जो मिट्टीके ढेलेको और सोनेको एक समान मानता है, सब प्राणियोंके प्रति जिसका समभाव है, वह अविनाशी पदको पाकर जन्म-मरणके चक्करसे सदाके लिए छूट जाता है ।

योऽर्थेन साध्यते धर्मः क्षयिष्णुः स प्रकीर्तितः ।

यः परार्थे परित्यागः सोऽक्षयो मुक्तिलक्षणम् ॥ २

पैसेसे जिस धर्मका साधन किया जाता है, वह जल्दी मिट जाता है । दूसरेके लिए जो धन खर्च किया जाता है, दूसरों की सेवा-सहायतामें जो धन लगाया जाता है, वही मुक्ति दिलाता है ।



भागवत में कहा है

पुराणोंमें श्रीमद्भागवत सबसे अधिक प्रसिद्ध है। सबसे अधिक उसीका पाठ होता है। हिन्दुओंके, वैष्णवोंके गलेका हार है वह।

जगद्गुरु भगवान् कृष्णकी मनोहर लीलाओंका भागवतमें अत्यन्त ही सुन्दर वर्णन है। भक्त उसे पढ़कर गद्गद हो उठते हैं। श्रद्धालु पाठक सुनते-सुनते रो पड़ते हैं। हृदयकी कालिमा धुलती है और मनुष्य सन्मार्गपर चलनेको आतुर हो उठता है।

भागवत आदिसे अन्ततक भगवत्प्रेमसे शराबोर है। धन्य हो उठता है मनुष्य, जो उसके रसकी एक छोटी-सी भी बूँद पी लेता है !

पिबत भागवतं रसमालयम् !

देवाय तस्मै नमः

: १ :

यं ब्रह्मावरुणेन्द्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥^१

ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र और मरुत् दिव्य स्तोत्रोंके द्वारा जिसकी स्तुति करते हैं, साम-संगीत जाननेवाले ऋषि-मुनि अंग, पद और क्रम-सहित वेद-उपनिषदों द्वारा जिसका गान करते हैं, योगी लोग ध्यानमग्न मनद्वारा जिसका दर्शन करते हैं और देवता, राक्षस और मनुष्य जिसका पार नहीं पाते, उस परमात्मदेवको हम प्रणाम करते हैं ।

ध्येयं सदा परिभवधनमभीष्टदोहं
तीर्थस्पर्धं शिवविरिञ्चनुतं शरण्यम् ।

भृत्यार्तिहं प्रणतपाल ! भवाब्धिपोतं
वन्दे महापुरुष ! ते चरणारविन्दम् ॥^२

शरणागतोंके रक्षक हे प्रभो, हम आपके चरणारविन्दोंकी वन्दना करते हैं । आपके चरण सदा ध्यान करने योग्य हैं । वे संसारकी पराजयोंको मिटानेवाले हैं । भक्तोंकी मनोकामना पूरी करनेवाले हैं । तीर्थोंके तीर्थ हैं । शिव, ब्रह्मा आदि उन्हें नमस्कार करते हैं । सेवकोंके रक्षक हैं और संसार-सागरसे पार जानेके लिए जहाज हैं ।

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं

सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ।

सत्यस्य

सत्यमृतसत्यनेत्रं

सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥^१

सत्य जिनका व्रत है, जो सत्यपरायण हैं, तीनों कालमें सत्य हैं, सत्यस्वरूप हैं, संसारका उद्भव जिनसे होता है, अंतर्-यामी रूपसे जो सत्यमें निहित हैं, सत्य और ऋत जिनके नेत्र हैं, उन सत्यके सत्यस्वरूप प्रभो, हम आपकी शरण हैं ।

धर्मके लक्षण

: २ :

अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता ।

भूताप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः ॥^२

सबके लिए साधारण धर्म यह है कि मन, वाणी और शरीर से किसीको सताये नहीं, किसीकी हिंसा न करे । सत्यपर दृढ़ रहे । चोरी न करे । काम, क्रोध और लोभसे बचे । वही काम करे, जिससे सभी प्राणियोंको प्रसन्नता हो और सबका भला हो ।

सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः ।

अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम् ॥

१. भागवत १०।२।२६ । २. वही ११।१७।२१

सन्तोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः ।
 नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम् ॥
 अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः ।
 तेष्व्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव ॥
 श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः ।
 सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ॥
 नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः ।
 त्रिशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति ॥ १

हे युधिष्ठिर ! धर्मके ये तीस लक्षण बताये गये हैं :

सत्य, दया, तपस्या, शौच, तितिक्षा, उचित-अनुचितका विचार, मनका संयम, इन्द्रियोंका संयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, संतोष, सबको एक दृष्टिसे देखना, सेवा, धीरे-धीरे संसारके भोगोंसे छुटकारा, यह विचार कि मनुष्यके अभिमानभरे कामोंका फल उलटा ही होता है, मौन, आत्माका चिन्तन, प्राणियोंको अन्न आदि बाँटकर खिलाना, सब प्राणियों और मनुष्योंमें अपनी जैसी आत्मा और इष्ट देवताका भाव, भगवान्‌के नामोंका, गुणोंका, लीलाका श्रवण, कीर्तन, स्मरण, उनकी पूजा, नमस्कार, भगवान्‌की सेवा, उनके साथ सखाभाव और उनके चरणोंमें आत्मसमर्पण । यह सभी मनुष्योंका धर्म है । इसका पालन करनेसे सर्वात्मा भगवान् प्रसन्न होते हैं ।

नायं जनो मे सुखदुःखहेतुर्न देवताऽऽत्मा ग्रहकर्मकालाः ।

मनः परं कारणमामनन्ति संसारचक्रं परिवर्तयेद् यत् ॥ १

न तो ये मनुष्य मेरे सुख-दुःखके कारण हैं और न देवता, न शरीर है और न ग्रह, न कर्म, काल आदि ही । मन ही इसका मूल कारण है । मन ही सारे संसार-चक्रको चला रहा है ।

दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च श्रुतं च कर्माणि च सद्ब्रतानि ।

सर्वे मनोनिग्रहलक्षणान्ताः परो हि योगो मनसः समाधिः ॥ २

दान, अपने धर्मका पालन, यम, नियम, वेदका अध्ययन, सत्कर्म, ब्रह्मचर्य आदि व्रतोंका अन्तिम फल यही है कि मन एकाग्र हो जाय, मन भगवान्में लग जाय । मनका समाहित हो जाना ही समाधि है ।

मनोवशेऽन्ये ह्यभवन् स्म देवा मनश्च नान्यस्य वशं समेति ।

भीष्मो हि देवः सहसः सहीयान् युञ्ज्याद् वशं तं सहि देवदेवः ॥ ३

सारी इन्द्रियाँ मनके वशमें हैं । मन किसी इन्द्रियके वशमें नहीं है । यह मन बलवान्से भी बलवान् है । बड़ा भयंकर देव है । इसे जो वशमें कर लेता है, वही देव-देव है । वह इन्द्रियोंको जीतनेवाला है ।

तं दुर्जयं शत्रुमसह्यवेगमरुन्तुदं तन्न विजित्य केचित् ।

कुर्वन्त्यसद्विग्रहमत्र मर्त्यैर्मित्राण्युदासीनरिपून् विमूढाः ॥ ४

१. भागवत ११।२३।४३ । २. वही ११।२६।४६ । ३. वही ११।२३।४८ । ४. वही ११।२३।४९

मन बहुत बड़ा शत्रु है। बड़े वेगसे हमला करता है। मर्मस्थलपर चोट करता है। इसे जीतना कठिन है। मनुष्यको चाहिए कि इसी शत्रुपर विजय प्राप्त करे। पर मूर्ख लोग इसे जीतनेका प्रयत्न ही नहीं करते। व्यर्थ ही दूसरे लोगोंसे झगड़ा-बखेड़ा करके किसीको मित्र बना लेते हैं, किसीको शत्रु, किसीको उदासीन।

उत्तम भागवतके लक्षण

: ४ :

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः ।

भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥^१

भगवान्का प्रेमी उत्तम भागवत वह है, जो सब प्राणियोंमें भगवान्के दर्शन करता है और जिसे प्राणी भगवान्के ही रूप जान पड़ते हैं।

न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा ।

सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः ॥^२

धन-सम्पत्तिमें या शरीर आदिमें जो अपने-परायेका भेद-भाव नहीं रखता, सब प्राणी-पदार्थोंमें परमात्माको विराजमान देखता है, समभाव रखता है और किसी भी घटनासे या संकल्पसे क्षुब्ध नहीं होता, वह उत्तम भागवत है।

अकिञ्चनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः ।

मया सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥^१

जिसके पास कुछ संग्रह नहीं है, जो अकिञ्चन है, जिसने इन्द्रियोंपर विजय पा ली है, जो शान्त है, समदर्शी है, भगवान्-की समीपताका जो सदा अनुभव करके संतुष्ट रहता है, उसके लिए आकाशका कोना-कोना आनन्द से भरा है ।

निरपेक्षं मुनि शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।

अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥^२

भगवान् कहते हैं कि जिसे किसीकी अपेक्षा नहीं, जो शान्त-है, किसीसे जिसका वैर नहीं है, जो समदर्शी है, उस महात्माके पीछे-पीछे मैं यह सोचकर घूमता रहता हूँ कि कहीं उसके चरणोंकी धूल उड़कर मुझपर पड़ जाय और मैं पवित्र हो जाऊँ !

जित देखों तित श्याममयी है !

: ५ :

अहं हि सर्वभूतानामादिरन्तोऽन्तरं बहिः ।

भौतिकानां यथा खं वाभूर्वायुर्ज्योतिरङ्गनाः ॥^३

गोपियोंसे भगवान् कहते हैं कि जैसे घट, पट आदि सभी पदार्थोंके आदि, अन्त और मध्यमें, बाहर और भीतर, उनके मूलकारण पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश ही ओत-प्रोत

१. भागवत ११।१४।१३ । २. वही ११।१४।१६ । ३. वही १०।८२।४६

हैं, वैसे ही सब प्राणियोंके आगे, पीछे, बीचमें, बाहर, भीतर केवल मैं ही मैं हूँ ।

अयं हि सर्वकल्पानां सध्रीचीनो मतो मम ।

मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः ॥ १

मुझे पानेके जितने भी साधन हैं, उनमें मैं तो सबसे अच्छा साधन यही मानता हूँ कि जितने भी प्राणी हैं, जितने भी पदार्थ हैं, सबमें मनसा, वाचा, कर्मणा मेरी ही भावना की जाय ।

मामेव सर्वभूतेषु बहिरन्तरपावृतम् ।

ईक्षेतात्मानं चात्मानं यथा खममलाशयः ॥ २

शुद्ध हृदयवाला पुरुष मुझे ही सभी प्राणियोंके भीतर-बाहर और हृदयमें बैठा हुआ देखे, जिस तरह आकाश सबके भीतर और बाहर छाया हुआ है ।

खं वायुर्मग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन् ।

सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः ॥ ३

आकाश और वायु, अग्नि और जल, पृथ्वी और नक्षत्र, प्राणी और दिशाएँ, पेड़ और पौधे, नदी और समुद्र—सबके सब भगवान्‌के ही शरीर हैं । सभी रूपोंमें भगवान् ही विराजमान हैं । भक्त ऐसा मानकर अनन्य भावसे सबको प्रणाम करे ।

दत्तात्रेयके चौबीस गुरु

: ६ :

एकवार यदु नामके राजाने एक अवधूतको मस्तीसे विचरते देखकर पूछा :

जनेषु दह्यमानेषु कामलोभदवाग्निना ।

न तप्यसेऽग्निना मुक्तो गङ्गाम्भःस्थ इव द्विपः ॥^१

“संसारमें सभी लोग काम और लोभकी आगसे जल रहे हैं । पर आपको देखकर लगता है कि आपतक उनकी आँच भी नहीं पहुँच पाती । ऐसा लगता है कि वनमें आग लगी होनेपर कोई हाथी गंगाके जलके भीतर जा पड़ा हो । ऐसा क्यों ?”

अवधूत थे दत्तात्रेय महाराज । बोले : मैंने बहुतसे गुरु किये हैं । उनसे सीख लेकर मैं इस तरह मुक्त होकर विचरता हूँ । मेरे गुरु हैं :

पृथिवी वायुराकाशमापोऽग्निश्चन्द्रमा रविः ।

कपोतोऽजगरः सिन्धुः पतङ्गो मधुकृद् गजः ॥

मधुहा हरिणो मीनः पिङ्गला कुररोऽर्भकः ।

कुमारी शरकृत् सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत् ॥^२

पृथिवी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतंग, मधुमक्खी, हाथी, शहद ले जानेवाला, हरिण, मछली, पिंगला वेश्या, कुरर पक्षी, बालक, कुमारी कन्या, बाण बनानेवाला, साँप, मकड़ी और भृङ्गीकीड़ा ।

भूतैराक्रम्यमाणोऽपि धीरो दैववशानुगैः ।
तद् विद्वान्न चलेन्मार्गादिन्वशिक्षं क्षितेर्व्रतम् ॥^१

१. पृथिवीसे मैंने धीरज रखनेकी, क्षमा करनेकी सीख ली । लोग उसपर कितना उत्पात नहीं करते ? कोई नींव खोदता है, कोई कुँआ । कोई उसपर फावड़ा चलाता है, कोई कुदाली । पृथिवी न तो किसीसे बदला लेती है, न रोती-चिल्लाती है । उसी तरह बुद्धिमान् आदमीको कभी अपना धीरज नहीं खोना चाहिए, भले ही दूसरे लोग हमला करते रहें ।

शश्वत्परार्थसर्वेहः परार्थैकान्तसम्भवः ।
साधुः शिक्षेत भूभृत्तो नगशिष्यः परात्मताम् ॥^२

पृथ्वीके ही विकार हैं पेड़ और पहाड़ । उनका जन्म दूसरों-का उपकार करनेके लिए ही हुआ है । साधुको उनसे परोपकार करनेकी सीख लेनी चाहिए ।

२. वायुसे मैंने यह सीख ली कि काम भरके लिए ही विषयोंका उपभोग करे । जैसे प्राणवायुको जरूरत भर ही भोजन चाहिए । बाहरी हवासे यह सीखा कि वह अच्छी-बुरी सभी जगह जाती है, पर सदा शुद्ध रहती है । हम भी किसी गुण-दोषमें लिपटें नहीं ।

३. आकाशसे सीखा कि चाहे जो हो, सदा अछूता रहे । पानी बरसे, आग लगे, अन्न पैदा हो, नष्ट हो, बादल आयें, चले जायँ—किसीसे कोई लगाव नहीं । चाहे जो काल हो, चाहे जो पैदा हो, चाहे जो मरे, आत्मा सबसे अछूती है ।

तेजोऽबन्नमयैर्भवैर्मैघाद्यैर्वानुरितैः ।

न स्पृश्यते न भस्तद्वत् कालसृष्टैर्गुणैः पुमान् ॥^१

४. पानीसे सीखा कि वह जैसा स्वच्छ, चिकना, मधुर और पवित्र करनेवाला होता है, वैसे ही हम भी बनें ।

५. आगसे सीखा कि सब कुछ पचा लेना चाहिए और किसी चीजका संग्रह नहीं करना चाहिए ।

स्वमायया सृष्टमिदं सदसल्लक्षणं विभुः ।

प्रविष्ट ईयते तत्तत्स्वरूपोऽग्निरिवैधसि ॥^२

अग्नि टेढ़ी, सीधी-लम्बी-चौड़ी लकड़ियोंमें लगी होनेपर वैसी ही जान पड़ती है, पर वैसी है नहीं; उसी तरह सबमें व्यापक आत्मा नाना रूपोंमें दिखायी देती है, पर भीतर एक है ।

६. चन्द्रमासे सीख ली कि कलाओंके घटने-बढ़ने पर भी वह जैसे एक ही रहता है, घटता-बढ़ता नहीं, वही हाल आत्माका है । जन्मसे मृत्युतक शरीर घटता-बढ़ता है, पर आत्मापर उसका कोई असर नहीं होता ।

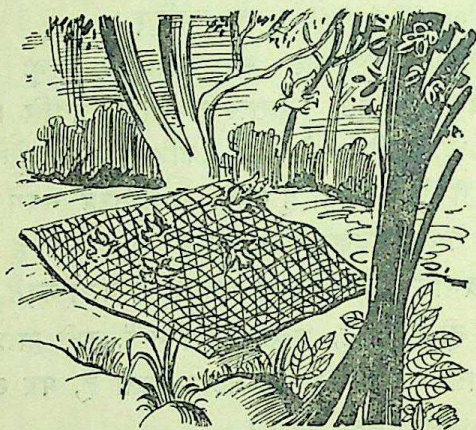
७. सूर्यसे यह सीख ली कि किसीमें आसक्त न हो । जो ले, सो पानीकी तरह बरसा दे । भिन्न-भिन्न पात्रोंमें सूर्य भिन्न-भिन्न दिखायी देता है, पर है वह एक ही । वही हाल आत्माका है ।

८. कबूतरसे यह सीख ली कि किसीसे अधिक स्नेह नहीं करना चाहिए । नहीं तो बड़ा कष्ट भोगना पड़ता है ।

नातिस्नेहः प्रसङ्गो वा कर्तव्यः क्वापि केनचित् ।

कुर्वन्विन्देत सन्तापं कपोत इव दीनधीः ॥^३

कबूतरोंका एक जोड़ा था। कई बच्चे थे। एक दिन माँ-बाप बाहर थे, तभी बहेलियोंने बच्चोंको जालमें फाँस लिया। लौटकर माँने देखा, तो वह भी दुखी होकर बच्चोंके साथ जालमें जा गिरी। बादमें कबूतर भी। बहेलिया सबको बाँधकर ले गया।



९. अजगर से सीख ली कि मीठा-फीका, थोड़ा-बहुत जो मिले, उसीमें संतोष माने :

ग्रासं सुमृष्टं विरसं महान्तं स्तोकमेव वा ।

यदृच्छयैवापतितं

ग्रसेदाजगरोऽक्रियः ॥ १

१०. समुद्रसे यह सीख ली कि सदा प्रसन्न रहे, गम्भीर रहे; फिर चाहे ज्वार आये, चाहे भाटा ।

११. पतंगसे सीख ली कि रूपके मोहमें पड़कर आगमें न कूदे ।

१२. भौरेसे सीख ली कि सार जहाँ मिले, ले ले ।

१३. हाथीसे सीख ली कि काठकी बनी हुई स्त्रीको भी न छुए ।

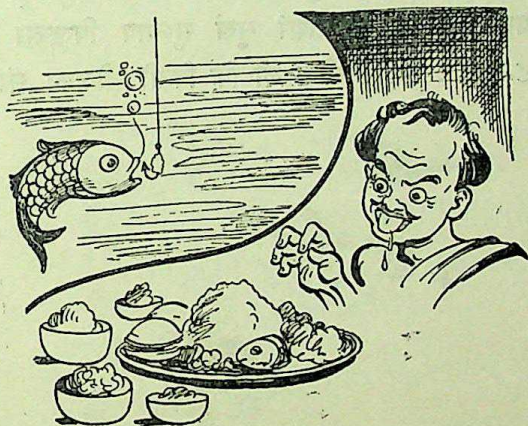
१४. मधुका छत्ता तोड़नेवालेसे सीख ली कि किसी चीजका संग्रह करके न रखे । 'खाय न खरचे सूम धन, चोर सबै लै जाय !'

न देयं नोपभोग्यं च लुब्धैर्यद् दुःखसञ्चितम् ।

भुङ्क्ते तदपि तच्चान्यो मधुहेवार्थविन्मधुः ॥१॥

१५. हरिनसे यह सीख ली कि संगीतके, नाच-गानेके फेरमें कभी न फँसे ।

१६. मछलीसे यह सीख ली कि जीभके स्वादमें कभी न



पड़े । मछली काँटेमें लगे माँसके टुकड़ेके फेरमें फँसकर प्राण गँवा देती है, वही हाल स्वादके लोभी पुरुषोंका होता है :

जिह्वातिप्रमाथिन्या जनो रसविमोहितः ।

मृत्युमृच्छत्यसद्बुद्धिर्मौनस्तु बडिशैर्यथा ॥^१

जीभको जीतना जरूरी है । जिसने जीभको जीत लिया, उसने सारी इन्द्रियाँ जीत लीं :

तावत् जितेन्द्रियो न स्यात् विजितान्येन्द्रियः पुमान् ।

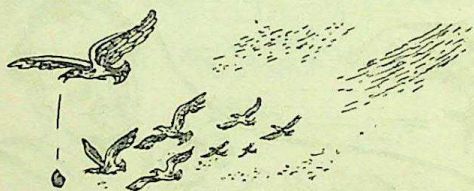
न जयेद् रसनं यावत् जितं सर्वं जिते रसे ॥^२

१७. पिंगला नामकी वेश्यासे यह सीख ली कि आशा और सो भी धनकी आशा बड़ा दुख देती है । पिंगला जबतक पुरुषसे धनकी आशा लगाये रही, तबतक बहुत दुःख भोगती रही । बाद में जब उसने धनकी आशा छोड़ दी, तो सुखसे सोयी :

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम् ।

यथा संछिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिङ्गला ॥^३

१८. कुरर पक्षीसे सीख ली कि किसी चीजका संग्रह नहीं



करना चाहिए । उससे भारी दुःख भोगना पड़ता है । जो अकिंचन है, वह बहुत सुखी रहता है :

परिग्रहो हि दुःखाय यद् यत्प्रियतमं नृणाम् ।

अनन्तं सुखमाप्नोति तद्विद्वान् यस्त्वकिञ्चनः ॥ १

कुरर पक्षी कहींसे मांसका एक टुकड़ा पा गया था । वह उसे अपनी चोंचमें दबाये लिये जा रहा था । दूसरे पक्षियों ने उसे देखा । वे उसे चोंचोंसे मारने लगे । लाचार उसने वह टुकड़ा फेंक दिया । सारी झंझट कट गयी ।

१९. बालकसे यह सीख ली कि हमें सदा निश्चिन्त और आनन्दमें मगन रहना चाहिए ।

२०. कुमारी कन्यासे यह सीख ली कि कई लोग साथ रहनेसे झगड़ा होता है, इसलिए अकेला ही विचरे । वह कुमारी धान कूट रही थी । चूड़ियाँ बजने लगीं, पर बाहर मेहमान बैठे थे । यह देख कन्याने अपने हाथोंकी चूड़ियाँ तोड़ दीं । केवल एक-एक चूड़ी रखी, तब बिना आवाजके धान कुट गया ।

२१. बाण बनानेवाला एक कारीगर बाण बना रहा था । उसके पाससे बाजे-गाजेके साथ एक बारात निकल गयी । उसे पता ही न चला । उससे मैंने सीखा कि आसन और प्राणायामसे,

अभ्यास और वैराग्यसे मनको वशमें कर ले, फिर उसे एक लक्ष्यमें लगा दे ।

मन एकत्र संयुज्याज्जितश्वासो जितासनः ।

वैराग्याभ्यासयोगेन ध्रियमाणमतन्द्रितः ॥^१

२२. साँपसे यह सीख ली कि उसकी तरह अकेला विचरे, कहीं घर न बनाये ।

२३. मकड़ीसे यह सीख ली कि परमेश्वर भी उसीकी तरह जाला फैलाकर उसीमें विहार करते हैं, फिर उसे निगल जाते हैं ।

२४. भृंगीसे यह सीख ली कि एकाग्र होकर मनको लगा दे तो जिसमें मन लगा हो, खुद भी वैसा ही हो जाता है । फिर यह मन लगाना चाहे प्रेमसे हो, चाहे द्वेषसे, चाहे भयसे । मन लगाया कि काम बना :

यत्र यत्र मनो देही धारयेत् सकलं धिया ।

स्नेहाद् द्वेषाद् भयाद् वापि याति तत्तत्स्वरूपताम् ॥^२

यां दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्जीर्यतो या न जीर्यते ।

तां तृष्णां दुःखनिवहां शर्मकामो द्रुतं त्यजेत् ॥^१

दुःखोंकी जड़ है विषयोंकी तृष्णा । जिनकी बुद्धि ठीक नहीं, वे लोग बड़ी कठिनाईसे उसका त्याग कर सकते हैं । शरीर बूढ़ा हो जाता है, पर तृष्णा नहीं बुढ़ाती । अपना भला चाहनेवाल को तृष्णा छोड़ देनी चाहिए ।

यत् पृथिव्यां ब्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।

न दुह्यन्ति मनःप्रीतिं पुंसः कामहतस्य ते ॥^२

पृथिवीमें जितना भी अन्न है, सोना है, पशु हैं, स्त्रियाँ हैं—सबकी सब मिलकर उस आदमीको संतुष्ट नहीं कर सकतीं, जो कामनाओंका शिकार है ।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।

हविषा कृष्णवर्त्मैव भूय एवाभिवर्धते ॥^३

विषयोंके भोगनेसे भोगवासना कभी शान्त नहीं हो सकती । जिस तरह घी डालनेसे आग और भड़क उठती है, उसी तरह भोगोंसे भोगवासनाएँ और अधिक जोर पकड़ती हैं ।

पुंसोऽयं संसृतेर्हेतुरसन्तोषोऽर्थकामयोः ।

यदृच्छयोपपन्नेन सन्तोषो मुक्तये स्मृतः ॥^४

१. भागवत ९।१९।१६ । २. वही ९।१९।१३ । ३. वही ९।१९।१४ ।

४. वही ८।१९।२५

धनसे और भोगोंसे संतोष न होनेके कारण ही आदमीको जन्म-मरणके चक्करमें पड़ना पड़ता है । जो मिल जाय, उसीमें प्रसन्न रहनेवाला मुक्ति पाता है ।

अर्थका अनर्थ छोड़ो

: ८ :

अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्षे रक्षणे व्यये ।

नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ता भ्रमो नृणाम् ॥^१

धन कमानेमें, कमाकर उसे बढ़ानेमें, रखनेमें, खर्च करनेमें, उसके नाशमें, उसके उपभोगमें जहाँ देखो वहाँ परिश्रम है, भय है, चिन्ता है, भ्रम है ।

स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः ।

भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसमानि च ॥

एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम् ।

तस्माद् अनर्थमर्थत्विं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥^२

चोरी, हिंसा, झूठ बोलना, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, अहंकार, भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्धा, लम्पटता, जुआ और शराब मनुष्योंमें ये १५ अनर्थ धनके कारण ही माने गये हैं । जो आदमी अपना कल्याण चाहता है, वह स्वार्थ और परमार्थ का विरोध करनेवाले इस अनर्थको, जिसे 'अर्थ' (धन) की संज्ञा मिली है, दूरसे ही त्याग दे ।

देवर्षिपितृभूतानि ज्ञातीन् बन्धूंश्च भागिनः ।

असंविभज्य चात्मानं यक्षवित्तः पतत्यधः ॥ १

देवताओं, ऋषियों, पितरों, प्राणियों, जाति-भाइयों, कुटुम्बियों और धनके दूसरे भागीदारोंको उनका भाग देकर जो आदमी उन्हें संतुष्ट नहीं करता और खुद भी उसका उपभोग नहीं करता, वह यक्षके समान धनकी रखवाली करनेवाला कंजूस निश्चय ही अधम गतिको पाता है ।

मुक्त पुरुष वह है

: १ :

यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेष्वमङ्गलम् ।

समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ २

जब मनुष्य किसी भी प्राणी, किसी भी वस्तुके प्रति राग या द्वेषका भाव नहीं रखता, तब वह समदर्शी हो जाता है । उसके लिए सब दिशाएँ सुखमयी बन जाती हैं ।

कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम् ।

सत्यसारोऽनवद्यात्मा सप्तः सर्वोपकारकः ॥ ३

हे ऊधव, मेरा भक्त कृपाकी मूर्ति होता है । वह किसी प्राणीसे वैर नहीं रखता । घोर दुःख भी प्रसन्नतासे सहता है । सत्य ही उसके जीवनका सार है । उसके मनमें पाप नहीं आता । वह समदर्शी होता है । सबका उपकार करता है ।

१. भागवत ११।२३।२४ ।

२. वही ९।१९।१५ ।

३. वही ११।११।२९

कामैरहतधीदन्तो मृदुः शुचिरकिञ्चनः ।

अनीहो मितभुक् शान्तः स्थिरो मच्छरणो मुनिः ॥ १

उसकी बुद्धि कामनाओंसे कलुषित नहीं होती । वह संयमी होता है । मीठे स्वभाववाला होता है । पवित्र होता है । वह संग्रह नहीं करता । मिताहार करता है । शांत रहता है । बुद्धि उसकी स्थिर रहती है । उसे केवल भगवान्‌का आसरा रहता है ।

अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमाञ्जितषड्गुणः ।

अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः ॥ २

वह प्रमाद नहीं करता । गम्भीर स्वभाववाला होता है । धैर्य रखता है । भूख और प्यास, शोक और मोह, जन्म और मृत्युसे विचलित नहीं होता । वह दूसरोंसे मान नहीं चाहता, पर दूसरोंका मान करता है । समर्थ होता है । शरीर, मन, बुद्धिको सदा ठिकानेपर बनाये रखता है । सबसे मित्रता रखता है । सबपर दया करता है, करुणा बरसाता है । कवि होता है । उसे भगवान्‌के तत्त्वका पूरा ज्ञान होता है ।

मुक्तिके साधन

: १० :

अहिंसा सत्यमस्तेयससङ्गो ह्रीरसञ्चयः ।

आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाभयम् ॥

शौचं जपस्तपो होमः श्रद्धाऽऽतिथ्यं सदर्चनम् ।

तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिराचार्यसेवनम् ॥

एते यमाः सनियमा उभयोर्द्वादश स्मृताः ।

पुंसामुपासितास्तात यथाकामं दुहन्ति हि ॥ १

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), असंगता, लज्जा, संचय न करना, आस्तिकता, ब्रह्मचर्य, मौन, स्थिरता, क्षमा और अभय—ये १२ यम हैं। बाहरी और भीतरी शौच, जप, तप, हवन, श्रद्धा, अतिथिसेवा, भगवान्की पूजा, तीर्थयात्रा, परोपकार, संतोष, गुरुकी सेवा—ये १२ नियम हैं। जो इनका पालन करते हैं, उन्हें इच्छाके अनुसार भोग भी मिलता है, मुक्ति भी।

शमो मन्निष्ठता बुद्धिर्दम इन्द्रियसंयमः ।

तितिक्षा दुःखसन्मर्षो जिह्वोपस्थजयो धृतिः ॥ २

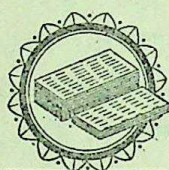
भगवान्में बुद्धि लगनेका नाम है, शम। इन्द्रियोंके संयमका नाम है, दम। दुःख सहनेका नाम है, तितिक्षा। जीभपर और जननेन्द्रियपर विजय पानेका नाम है, धैर्य।

दण्डन्यासः परं दानं कामत्यागस्तपः स्मृतम् ।

स्वभावविजयः शौर्यं सत्यं च समदर्शनम् ॥ ३

किसीसे वैर न करनेका, सबको अभय देनेका नाम है, दान। कामनाओंको त्याग करनेका नाम है, तप। अपनी वासनाओंको जीतनेका नाम है, वीरता। सब जगह समान रूपसे विराजमान, सत्यस्वरूप परमात्माके दर्शन करनेका नाम है, सत्य। ●

-
१. भागवत ११।१९।३३-३५। २. वही ११।१९।३६।
३. वही ११।१९।३७



तुलसी रामायण में कहा है

गोस्वामी तुलसीदासकी रामायण !

भक्ति, ज्ञान और कर्मकी त्रिवेणी ।

जो कोई उसमें स्नान करता है, पवित्र हुए बिना नहीं रहता ।
वाल्मीकि-रामायण पीछे पड़ गयी, तुलसी-रामायण जन-जनके
हृदयका हार बन बैठी ।

गाँव हो, देहात हो, शहर हो, कस्बा हो, जंगल हो, पहाड़
हो—जहाँ खोजिये, तुलसी-रामायण मिल ही जायगी । हिन्दी
बोलनेवाला शायद ही कोई बालक और वृद्ध, स्त्री और पुरुष ऐसा
निकले, जिसे रामायणकी कुछ चौपाइयाँ, कुछ दोहे कण्ठ न हों ।

‘जनमन मंजु मुकुर मल हरनी’ रामायण भक्तिरससे ओत-
प्रोत है । रामकथाके बहाने तुलसीदासने मानो भक्तिकी गंगा
ही बहा दी है । ठीक ही कहा है उन्होंने :

जे एहि कथाहि सनेह समेता ।
 पढ़िहहि सुनिहहि समुझि सचेता ॥
 हुइहहि रामचरन अनुरागी ।
 कलिमल रहित सुमंगल भागी ॥

हृदयकी शुद्धि और भगवान्‌के चरणोंकी प्रीति—इनके अलावा मनुष्यको और चाहिए ही क्या ?

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू : १ :

सब कर परम प्रकासक जोई । राम अनादि अवधपति सोई ॥
 जगत प्रकास्य प्रकासक रामू । मायाधीस ग्यान गुन धामू ॥
 जासु सत्यता तें जड़ माया । भास सत्य इव मोह सहाया ॥

रजत सीप मँहु भास जिमि, जथा भानुकर बारि ।

जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ, भ्रम न सकइ कोउ टारि ॥

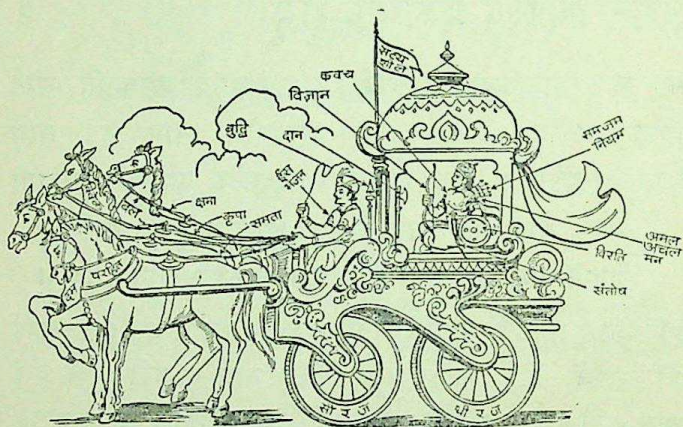
एहि विधि जग हरि आश्रित रहई । जदपि असत्य देत दुख अहई ॥
 जाँ सपनें सिर काटै कोई । बिनु जागें न दूरि दुख होई ॥
 जासु कृपाँ अस भ्रम मिटि जाई । गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई ॥^१
 अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत प्रेम वस सगुन सो होई ॥
 जो गुन रहित सगुन सोइ कैसैं । जलु हिम उपल बिलग नहि जैसे ॥^२
 जब जब होइ धरम कै हानी । बाढ़िह असुर अधम अभिमानी ॥
 करहि अनीति जाइ नहि वरनी । सीदहि बिप्र धेनु सुर धरनी ॥
 तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा । हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा ॥

असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहि निज श्रुति सेतु ।
जग विस्तारहि बिसद जस, राम जन्म कर हेतु ॥ १

जाके अस रथ होइ दृढ़

: २ :

सुनहु सखा कह कृपा निधाना । जेहि जय होइ सो स्यंदन आना ॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका । सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका ॥



बल विवेक दम परहित घोरे । छमा कृपा समता रजु जोरे ॥
ईस भजनु सारथी सुजाना । विरति चर्म संतोष कृपाना ॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा । वर विग्यान कठिन कोदंडा ॥
अमल अचल मन त्रोन समाना । सम जम नियम सिलीमुख नाना ॥

कवच अभेद विप्र गुरु पूजा । एहि सम विजय उपाय न दूजा ॥
सखा धर्ममय अस रथ जाकें । जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें ॥

महा अजय संसार रिपु, जीति सकइ सो बीर ।

जाकें अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मतिधीर ॥ १

राम बसहु तिन्हके मनमांही

: ३ :

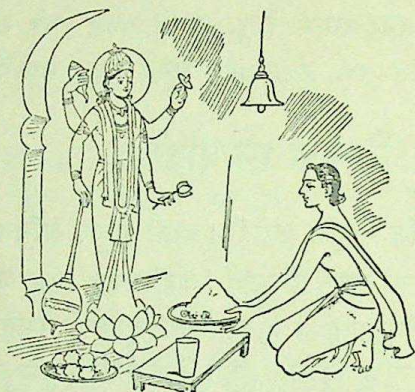
वालमीकि हँसि कहहिं बहोरी । बानी मधुर अमिय रस बोरी ॥
सुनहु राम अव कहउँ निकेता । जहाँ बसहु सिय लखन समेता ॥
जिन्हके श्रवन समुद्र समाना । कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे । तिन्ह के हिय तुम्ह कहँ गृह रूरे ॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे । रहहिं दरस जलधर अभिलाषे ॥
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी । रूप बिन्दु जल होहिं सुखारी ॥
तिन्ह केँ हृदय सदन सुखदायक । बसहु बन्धु सिय सह रघुनायक ॥

जसु तुम्हार । मानस बिमल, हंसिनि जीहा जासु ।

मुक्ताहल गुन गन चुनइ, राम बसहु हियँ तासु ॥

प्रभुप्रसाद सुचि सुभग सुवासा । सादर जासु लहइ नित नासा ॥
तुम्हहिं निवेदित भोजन करहीं । प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं ॥
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी । प्रीति सहित करि बिनय विसेषी ॥
कर नित करहिं राम पद पूजा । राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा ॥
चरन राम तीरथ चलि जाहीं । राम बसहु तिन्ह केँ मन मांहीं ॥

मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा । पूजहिं तुम्हहिं सहित परिवारा ॥



तरपन होम करहिं विधि नाना । विप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना ॥
तुम्ह तें अधिक गुरहिं जियँ जानी । सकल भायँ सेवहिं सनमानी ॥

सबुकरि माँगहिं एक फलु, राम चरन रति होउ ।
तिन्ह के मन मंदिर बसहु, सिय रघुनन्दन दोउ ॥

काम कोह मद मान न मोहा । लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥
जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया । तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया ॥
सब के प्रिय सब के हितकारी । दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी ॥
कहहिं सत्य प्रिय वचन विचारी । जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥
तुम्हहिं छाँड़ि गति दूसरि नाहीं । राम बसहु तिन्ह कें मनमाहीं ॥
जननी सम जानहिं परनारी । धनु पराव विष तें विष भारी ॥

जे हरषहिं पर सम्पति देखी । दुखित होहिं परबिपति बिसेपी ॥
जिन्हहिं राम तुम्ह प्रान पिआरे । तिन्ह कें मन सुभ सदन तुम्हारे ॥

स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन्ह कें सब तुम्ह तात ।

मन मंदिर तिन्ह कें बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात ॥

अवगुन तजि सब के गुन गहहीं । विप्र धेनु हित संकट सहहीं ॥
नीति निपुन जिन्ह कइ जगलीका । घर तुम्हार तिन्ह करमनु नीका ॥
गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा । जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा ॥
राम भगत प्रिय लागहिं जेही । तेहि उर बसहु सहित बैदेही ॥
जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई । प्रिय परिवार सदन सुखदाई ॥
सब तजि तुम्हहिं रहइ उर लाई । तेहि के हृदयँ रहउ रघुराई ॥
सरगु नरकु अपवरगु समाना । जहँ तहँ देख धरें धनु बाना ॥
करम वचन मन राउर चेरा । राम करहु तेहि कें उर डेरा ॥

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेहु ।

बसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज गेहु ॥ १

परहित सरिस धर्म नहिं भाई

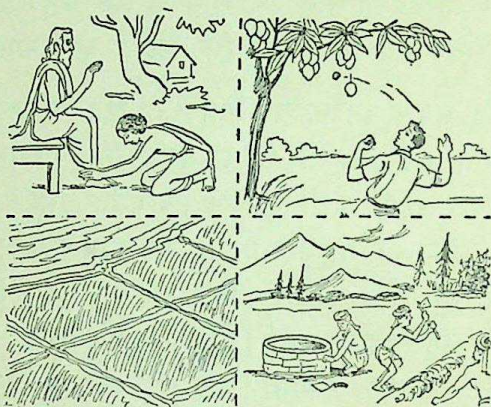
: ४ :

परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा । पर निंदा सम अघ न गरीसा ॥
परहित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥ १
परहित वस जिनके मनमाँही । तिन कह जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥ ४

१. अयोध्याकांड १२७-३१ । २. उत्तरकांड १२० । ३. उत्तरकांड ४०

४. अरण्यकांड ३०

अथ कि पिसुनता सम कछु आना । धर्म कि दयासरिस हरिजाना ॥ १
संत बिटप सरिता गिरि धरनी । पर हित हेतु सबन्हि कै करनी ॥ २



कबहुँ कि दुख सबकर हित ताकें । तेहि कि दरिद्र परसमनि जाके ॥ ३

धर्म न दूसर सत्य समाना

: ५ :

तन तिय तनय धामु धनु धरनी । सत्यसंध कहूँ तृन सम बरनी ॥ ४
नहिं असत्य सम पातक पुंजा । गिरि समहोहि कि कोटिक गुंजा ॥
सत्य मूल सब सुकृत सुहाये । वेद पुरान बिदित मनु गाये ॥ ५
धरमु न दूसर सत्य समाना । आगम निगम पुरान बखाना ॥ ६

१. उत्तरकांड १११ । २. उत्तरकांड १२४ । ३. उत्तरकांड १११ ।
४. अयोध्याकांड ३४ । ५. अयोध्याकांड २७ । ६. अयोध्याकांड ९४

संत सहहिं दुख परहित लागी

: ६ :

साधु चरित सुभ चरित कपासू । निरस विसद गुनमय फल जासू ॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा । बंदनीय जेहिं जग जस पावा ॥ १
संत असंतन्हि कै असि करनी । जिमि कुठार चंदन आचरनी ॥
काटइ परसु मलय सुनु भाई । निज गुन देइ सुगंध वसाई ॥
ताते सुर सीसन्ह चढ़त, जग बल्लभ श्रीखंड ।

अनल दाहि पीटत घनहिं, परसु बदन यह दंड ॥
विषय अलंपट सील गुनाकर । पर दुख दुख सुख सुख देखें पर ॥
सम अभूत रिपु विमद विरागी । लोभामरष हरष भय त्यागी ॥
कोमल चित दीनन्ह पर दाया । मनवचक्रम मम भगति अमाया ॥
सर्वहिं मानप्रद आपु अमानी । भरत प्रान सम मम ते प्रानी ॥
बिगत काम मम नाम परायन । सांति विरति विनती मुदितायन ॥
सीतलता सरलता मयत्री । द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री ॥
ए सब लच्छन बसहिं जासु उर । जानेहु तात संत संतत फुर ॥
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं । परुष वचन कवहूँ नहिं बोलहिं ॥

निन्दा अस्तुति उभय सम, समता सम पद कंज ।

ते सज्जन मम प्रान प्रिय, गुनमंदिर सुख पुंज ॥ २

पर उपकार वचन मन काया । संत सहज सुभाउ खगराया ॥
संत सहहिं दुख परहित लागी । पर दुख हेतु असंत अभागी ॥
भूर्ज तरु सम संत कृपाला । परहित निति सह विपति विसाला ॥ ३
संत हृदय नवनीत समाना । कहा कविन्ह परि कहै न जाना ॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता । पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता ॥ ४

१. बालकांड १ । २. उत्तरकांड ३७-३८ । ३. उत्तरकांड १२०
४. उत्तरकांड १२४

बसइ भगति जाके उरमांही

: ७ :

प्रथम भगति संतन्ह कर संगी । दूसरि रति मम कथा प्रसंगी ॥

गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान ।

चौथि भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान ॥

मंत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा । पंचम भजन सो वेद प्रकासा ॥
छठ दम सील विरति बहुकरमा । निरत निरंतर सज्जन धरमा ॥
सातवँ सम मोहिं मय जग देखा । मोतें संत अधिक करि लेखा ॥
आठवँ जथालाभ संतोषा । सपनेहुं नहि देखइ पर दोषा ॥
नवम सरल सब सन छलहीना । मम भरोस हियँ हरष न दीना ॥^१
राम भगति चिन्तामनि सुन्दर । बसइ गरुड़ जाके उर अन्तर ॥
परम प्रकास रूप दिन राती । नहिंकछु चहिअ दिआ घृतवाती ॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा । लोभ बात नहिं ताहि बुझावा ॥
प्रबल अविद्या तम मिटि जाई । हारहिं सकल सलभ समुदाई ॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं । बसइ भगति जाके उर माहीं ॥^२
मम गुन गावत पुलक सरीरा । गदगद गिरा नयन बह नीरा ॥
काम आदि मद दंभ न जाकें । तात निरंतर बस मैं ताकें ॥^३
निर्मल मन जन सो मोहिं पावा । मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥^४
मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा । किएँ जोग तप ग्यान विरागा ॥

बिनु सतसंग न हरि कथा, तेहि बिनु मोह न भाग ।

मोह गएँ बिनु रामपद, होइ न दृढ़ अनुराग ॥^५

१. अरण्यकांड ३४-३५ । २. उत्तरकांड ११९ । ३. अरण्यकांड १५ ।

४. सुन्दरकांड ४३ । ५. उत्तरकांड ६१-६२

मोह न अंध कीन्ह केहि केही ?

: ८ :

मोह न अंध कीन्ह केहि केही । को जग काम नचाव न जेही ॥
तृस्ना केहि न कीन्ह बौराहा । केहिकर हृदय क्रोध नहिं दाहा ॥

ग्यानी तापस सूर कवि, कोबिद गुन आगार ।
केहि कै लोभ बिडम्बना, कीन्ह न एहिं संसार ॥
श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि ।
मृगलोचनि के नैन सर, को अस लागु न जाहि ॥ १

जोग वियोग भोग भल मंदा । हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा ॥
जनमु मरनु जहँ लगि जगजारू । संपति विपति करमु अरु कालू ॥
धरनि धामु धनु पुर परिवारू । सरगु नरकु जहँ लगि व्यवहारू ॥
देखिअ सुनिअ गुनिअ मनमांहीं । मोह मूल परमारथु नाहीं ॥

सपनें होइ भिखारि नृपु, रंकु नाकपति होइ ।

जागें लाभु न हानि कछु, तिमि प्रपंच जियें जोइ ॥

मोहनिसाँ सबु सोवनिहारा । देखिअ सपन अनेक प्रकारा ॥
एहिं जग जामिनि जागहि जोगी । परमारथी प्रपंच वियोगी ॥
जानिअ तबहिं जीव जग जागा । जब सब विषय विलास बिरागा ॥
होइ विवेकु मोह भ्रम भागा । तब रघुनाथ चरन अनुरागा ॥ २

कारन विनु रघुनाथ कृपाला

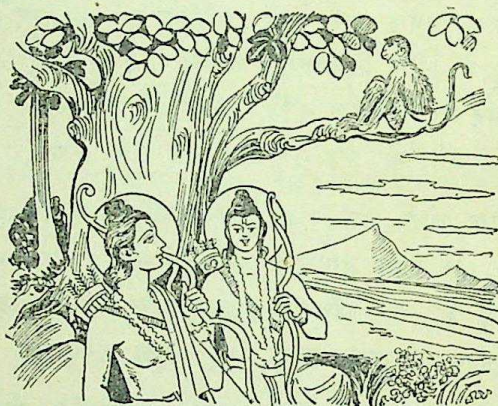
: ९ :

प्रभु तर तर कपि डार पर, ते किए आपु समान ।

तुलसी कहँ न राम से, साहिब सीलनिधान ॥^१

सकल विघ्न व्यापहि नहि तेही । राम सुकृपाँ विलोकहि जेही ॥^२

कोमल चितअति दीन दयाला । कारन विनु रघुनाथ कृपाला ॥^३



सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा । भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा ॥
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी । जिमि बालक राखइ महतारी ॥^४
रामकृपा विनु सुनु खगराई । जानि न जाइ राम प्रभुताई ॥
जानें विनु न होइ परतीती । विनु परतीति होइ नहिं प्रीती ॥
प्रीति विनानहिं भगति दिढ़ाई । जिमि खगपति जल कै चिकनाई ॥^५

१. बालकांड, २९ । २. बालकांड, ३८ । ३. आरण्यकांड ३२ ।

४. अरण्यकांड ४२ । ५. उत्तरकांड ८८

बिनु संतोष न काम नसाहीं । काम अच्छत सुख सपनेहुँ नाहीं ॥
राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा । थलबिहीन तरु कबहुँ कि जामा ॥ १

बिनु बिस्वास भगति नाहि, तेहि बिनु द्रवहिं न रामु ।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ, जीव न लह बिश्रामु ॥ २

लोक लाहु परलोक निवाहू : १० :

बंदउँ नाम राम रघुवर को । हेतु कृसानु भानु हिमकर को ॥ ३
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू । लोक लाहु परलोक निवाहू ॥ ४

राम नाम मनिदीप धरु, जीह देहरों द्वार ।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ, जौं चाहसि उजिआर ॥ ५

सीय राममय सब जग जानी : ११ :

जड़ चेतन जग जीव जत, सकल राममय जानि ।
बंदउँ सब के पद कमल, सदा जोरि जुग पानि ॥
सीय राममय सब जग जानी । करउँ प्रनाम जोरिजुग पानी ॥ ६



धर्म क्या कहता है ?

लेखक : श्रीकृष्णदत्त भट्ट

धर्म मानव-जीवनकी आधार-शिला है। मानवके विकासमें, उसकी उन्नतिमें धर्मका बहुत बड़ा स्थान है। भिन्न-भिन्न धर्मोंके ऊपरी आचारोंमें हमें अन्तर दिखाई पड़ता है अवश्य, पर हम उनके भीतर घुसकर देखें, तो पता चलेगा कि सभी धर्मोंके हृदयसे एक ही त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है : सत्य, प्रेम और करुणाकी।

हमारी 'धर्म क्या कहता है ?'—पुस्तक-मालामें भिन्न-भिन्न धर्मोंका सरल और रोचक परिचय दिया गया है—हर स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्धके लिए आवश्यक, 'हितं मनोहारि' !

१. धर्मोंकी फुलवारी (सब धर्मोंकी सामान्य जानकारी)
२. वैदिक धर्म क्या कहता है ? (पहला भाग : वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्)
३. वैदिक धर्म क्या कहता है ? (दूसरा भाग : स्मृति, वाल्मीकि-रामायण, योगवासिष्ठ, महाभारत, दर्शनशास्त्र)
४. वैदिक धर्म क्या कहता है ? (तीसरा भाग : गीता, पुराण, भागवत, तुलसी-रामायण)
५. जैन धर्म क्या कहता है ?
६. बौद्ध धर्म क्या कहता है ?
७. पारसी धर्म क्या कहता है ?
८. यहूदी धर्म क्या कहता है ?
९. ताओ और कनफ्यूश धर्म क्या कहता है ?
१०. ईसाई धर्म क्या कहता है ?
११. इस्लाम धर्म क्या कहता है ?
१२. सिख धर्म क्या कहता है ?

हर पुस्तककी पृष्ठ-संख्या लगभग ८० और मूल्य ६० नये पैसे।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-१



[Faint, illegible handwritten text]

[Faint, illegible handwritten text]

